सत्य की खोज में

मूल लेखक
डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन
उपराष्ट्रपति, भारत गणराज्य
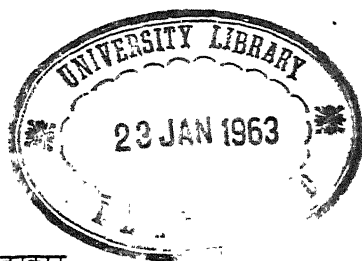
हिन्दी रूपान्तरकार
वेदराज वेदालङ्कार

शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड
पुस्तक प्रकाशक एवं विक्रेता : आगरा

प्रकाशक का वक्तव्य

सरस्वती के वरद पुत्र एवं प्रसिद्ध दार्शनिक माननीय डॉ. राधाकृष्णन लिखित 'My Search for Truth' के हिन्दी अनुवाद 'सत्य की खोज में' का द्वितीय संस्करण अपने पाठकों को भेंट करते हुए हमें परम हर्ष हो रहा है।

माननीय डाक्टर साहिब हिन्दू दर्शन एवं धर्म के माने हुए विश्वविख्यात व्याख्याता हैं। हिन्दू दर्शन और धर्मशास्त्र का उनका अध्ययन अत्यन्त गम्भीर एवं विस्तीर्ण है। देश-विदेश के अनेक विश्वविद्यालयों तथा दार्शनिक गोष्ठियों में हिन्दू दर्शन और धर्म की व्याख्या के लिए उन्हें आमन्त्रित किया जाता रहा है।

प्रस्तुत पुस्तक में विद्वान् लेखक ने हिन्दू धर्म की महत्ता, हिन्दू दर्शन-शास्त्रों की गरिमा तथा जीवन के प्रति हिन्दू दृष्टिकोण को अत्यन्त सरल, सुबोध एवं प्राञ्जल भाषा में प्रस्तुत किया है।

पश्चिम की चकाचौंध और भौतिकवाद से प्रभावित इस स्पूतनिक और एटम के युग में विनाशोन्मुख मानवता को और इंसान की भटकती हुई आत्मा को अगर कोई चीज सही रास्ते पर ला सकती है तो वह हिन्दू धर्म और दर्शन का यथार्थ ज्ञान है, जो नैतिक जीवन की महत्ता और आध्यात्मिक जीवन की गरिमा पर बल देता है। इस तथ्य को अत्यन्त प्रभावोत्पादक ढँग से इसमें प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक के अध्ययन से जहाँ पाठकों के हृदय में हिन्दू धर्म और दर्शन की गौरव गरिमा अंकित होगी, वहाँ उनको आत्म-निर्माण में भी सहायता मिलेगी—इसी भावना से प्रेरित होकर हम यह द्वितीय संस्करण प्रकाशित कर रहे हैं।

आगरा **राधेमोहन अग्रवाल**

दिसम्बर, १९५९

विषय-सूची

: १ :

प्रारम्भिक जीवन

मेरा जन्म ५ सितम्बर, १८८८ को दक्षिण भारत में, मद्रास के पश्चिमोत्तर में ४० मील दूर स्थित तिरुताणि नामक छोटे से स्थान में हुआ था। मैं अपने श्रद्धालु एवं धार्मिक प्रकृति के माता-पिता की दूसरी सन्तान हूँ। मुझे कुल-प्रतिष्ठा तथा लक्ष्मी के कृपापात्र होने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। १२ वर्ष की आयु तक मेरा प्रारम्भिक जीवन तिरुताणि और तिरुपति में, जो प्रसिद्ध तीर्थस्थान हैं, व्यतीत हुआ। न जाने क्यों, जब से मैंने होश सँभाला, प्रकृति के इस घटना-प्रवाह के पीछे विद्यमान एक अदृश्य विश्व की सत्ता में मुझे दृढ़ विश्वास हो गया—एक ऐसा इन्द्रियातीत विश्व जो केवल मनोगम्य है। भयंकर से भयंकर बाधाओं के उपस्थित होने पर भी मेरा यह विश्वास सदैव अविचल रहा है। सम्भवतः, अपने मननशील स्वभाव के कारण ही मुझे एकान्त बहुत प्रिय है। अपने बाह्य क्रिया-कलापों के साथ-साथ मेरा एक अत्यन्त शान्ति एवं प्रसाद से परिपूर्ण मौन का आन्तरिक जगत् भी है, जिसमें विचरण करने में मुझे असीम आनन्द आता है। प्रारम्भ से ही पुस्तकों में मेरी बड़ी रुचि रही है, उन्होंने मेरे दृष्टिक्षेत्र को विस्तीर्ण किया है, मुझमें भव्य स्वप्नों की सृष्टि की है; मैं उन्हें अपना पथ-प्रदर्शक और विश्वसनीय मित्र समझता हूँ। जिन सामाजिक समारोहों में लोग अपने कष्टों को भूल से जाते हैं, मुझे वे बिलकुल रुचिकर नहीं लगते। एक या दो विशेष रूप से परिचित मित्रों की संगति को अपवाद-रूप

छोड़ कर, मैं दूसरों की संगति में प्रयत्न करके ही कुछ समय गुजार पाता हूँ। परन्तु आवश्यकता पड़ने पर, बड़े या छोटे, वृद्ध या तरुण किसी भी व्यक्ति के साथ व्यवहार एवं सम्भाषण करने की कला से भी मैं पूर्णतः परिचित हूँ। यद्यपि मेरा स्वभाव शर्मीला और प्रकृति एकान्तप्रेमी है, परन्तु लोगों की मेरे बारे में ऐसी धारणा है कि मैं बड़ा ही मिलनसार और सामाजिक व्यक्ति हूं। मेरे आत्म-केन्द्रित स्वभाव और समाज से दूर भागने की प्रवृत्ति के कारण ही मेरे बारे में ऐसी प्रसिद्धि है कि मुझे समझना बड़ा कठिन है। मेरे बारे में लोगों की यह भी राय है कि मेरा व्यवहार शुष्क एवं मेरी संकल्पशक्ति अत्यन्त प्रबल है, जबकि वस्तुस्थिति यह है कि मुझमें इनके सर्वथा विरोधी गुण हैं। मुझमें उद्वेगों का प्रबल एवं प्रचण्ड प्रवाह है, जिसे मैं सामान्यतः छिपाने की चेष्टा करता हूँ। मैं अत्यन्त ही संवेदनशील और भावुक व्यक्ति हूँ। अगर एक अस्थिर संवेदनशील प्रकृति और साधारण बौद्धिक प्रतिभा के होते हुए, मेरी जीवन-धारा दूषित नहीं हो पाई और अगर सम्पादक महोदय यह उचित समझते हैं कि मैं निबन्ध के रूप में एक लघु आत्म-चरित लिखूँ, तो यह मेरा सौभाग्य ही समझिए। जब नेपोलियन के आगे उसके अधिकारियों की पदोन्नति की सूची प्रस्तुत की जाती थी, तो वह किसी-किसी अधिकारी के नाम के आगे हाशिये में ये शब्द लिख दिया करता था, "क्या यह भाग्यशाली है?" मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ और इसी भाग्य ने ही मेरी अब तक रक्षा की है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि एक महान् नाविक मेरी जीवन-नौका को उन असंख्य चट्टानों में से खेकर ले जा रहा है, जिनसे टकरा कर दूसरी नौकाएँ जलमग्न हो गयी होतीं। एक प्रकार की विशेष

योजना के अधीन, मैंने अपने जीवन के विषय में निर्णय किये हैं और जब चुनाव का अवसर आता है तब मुझे ऐसा भास होता है कि एक अदृश्य शक्ति मेरे उद्देश्यों से भिन्न उद्देश्यों के लिए मेरा पथ-प्रदर्शन कर रही है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि मैं विधाता की अपने ऊपर किसी विशेष कृपा का कोई दावा कर रहा हूँ। अगर कोई इसका यह अर्थ लगाए कि उस सर्वोच्च सत्ता को किसी व्यक्ति-विशेष में विशेष दिलचस्पी है और किसी व्यक्ति-विशेष के प्रति उसका विशेष प्रेम है, तो इस प्रकार की धारणा सर्वथा अयुक्तियुक्त होगी। जीवन में जो कुछ भी थोड़ी-बहुत मुझे सफलता प्राप्त हुई है, उसका श्रेय इस भाग्य या दैवी पथ-प्रदर्शन को है, जब कि मेरी असफलताओं के लिए मेरा दुर्भाग्य या मेरी परिस्थितियाँ उत्तरदायी नहीं हैं। मेरी सफलताओं का पूर्ण श्रेय मुझे नहीं है, परन्तु मेरी गलतियाँ अधिकांशतः मेरे अपने अज्ञान और दुर्बलता के कारण हुई हैं।

: २ :

गृह जीवन

प्रसिद्ध दार्शनिक हेगल की एक बड़ी मशहूर उक्ति है कि अगर एक मनुष्य को अपनी रुचि के अनुकूल कार्य मिल जाय और एक ऐसी जीवन-सहचरी मिल जाय जिसे वह हार्दिक भाव से प्रेम करता है, तो उसका यह जीवन सफल समझिये। अपने जीवन में बहुधा इस उक्ति को मैं स्मरण करता रहा हूँ। जब कि पुरुष राजनीति और व्यापार, प्रेमालाप और सांसारिक सफलताओं के पीछे भागते फिरते हैं और जीवन में अधिकाधिक आनन्द लेना चाहते हैं, महिलाएँ जो कि कम आडम्बरप्रिय होती हैं और

वास्तविकता के अधिक निकट होती हैं, यह अनुभव करती हैं कि दैनिक क्रियाकलापों के सम्पादन के साथ ही, जीवन की वास्तविकता एवं सत्यता की समाप्ति नहीं हो जाती। वे एक अधिक गहरी एवं अन्तिम सत्ता से चिपटी रहती हैं, जिसके प्रकाश में जीवन उन्हें अनिश्चित एवं क्षुद्र प्रतीत नहीं होता। प्रकृतिवादियों और आदर्शवादियों, केवल स्पृश्य एवं ग्राह्य वस्तुओं को ही वास्तविक समझने वालों और शाश्वत मूल्यों की वास्तविकता में विश्वास रखने वालों के बीच संघर्ष में, भारतवर्ष की महिलाओं का रुझान विशेष रूप से दूसरे पक्ष की ओर ही दिखाई देता है। उपदेश की अपेक्षा उदाहरण द्वारा, शब्दों की अपेक्षा अपने जीवन द्वारा, वे दैनिक जीवन की उन अस्थिर घटनाओं को जो हमारे जीवन का एक बहुत बड़ा भाग हैं, एक विशेष महत्ता और गम्भीर अर्थ प्रदान करती हैं। यद्यपि मेरी श्रेणी और पीढ़ी के बहुत से पुरुषों के विवाह छोटी आयु में ही सम्पन्न हो गये थे, फिर भी ये बाल-विवाह असफल नहीं कहे जा सकते। आडम्बरशून्य हिन्दू महिलाएँ अब भी गौरवशालिनी एवं परिश्रमी हिन्दू महिला के आदर्श से अत्यन्त प्रभावित हैं। "अगर मेरे पतिदेव किसी अन्य स्त्री में आसक्त हो गये हैं, मुझे पतिपरायणा रहना है। अगर वे पथभ्रष्ट हो गये हैं, मुझे अपने कर्त्तव्य-पथ पर दृढ़ निष्ठा से अग्रसर होना है। अगर किसी दूसरी स्त्री की ओर उनकी दृष्टि चली गयी है, मुझे उनके आगमन की प्रतीक्षा करनी है।" अगर इस अन्ध-भक्ति में कुछ दोष है, तब उस शाश्वत सत्ता में भी दोष होगा, जो उस पतिपरायणा स्त्री के एकनिष्ठ प्रेम के समान हमसे प्रेम करता है, अत्यन्त धैर्य एवं अक्लान्त भाव से हमारी प्रतीक्षा करता है, जब संसार के मिथ्या आनन्दों से ऊब कर हम

उसकी ओर जाते हैं। अपने प्रेम-पात्र की दुर्बलताओं पर विजय पाने वाला विशुद्ध एवं निःस्वार्थ प्रेम, संभवतः भगवान् का सबसे बड़ा महिमामय वरदान है। भारतीय वैवाहिक जीवन मृदुलता और प्रगाढ़ प्रेम से सराबोर है; व्यवस्थापिका सभाओं की सामाजिक रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप न करने की नीति के कारण निर्जीव बनी हुई सामाजिक संस्थाओं में उपयुक्त परिवर्तन करके हम इसे और अधिक गौरवशाली बना सकते हैं। भारतीय महिलाओं के शरीर एवं मन की सुरक्षा केवल उनके पतियों की शुभेच्छा पर ही निर्भर है, परन्तु आधुनिक अवस्थाओं में इतना ही पर्याप्त नहीं है।

: ३ :
दर्शन और धर्म

मेरी स्कूल और कालिज की शिक्षा ईसाई मिशनरी संस्थाओं में सम्पन्न हुई। अपनी प्रारम्भिक संस्कारग्रहणशील सुकुमार अवस्था में मैं केवल 'न्यू टैस्टामेण्ट' की शिक्षाओं से ही परिचित नहीं हुआ अपितु ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दू विश्वासों एवं आचारों पर की जाने वाली आलोचनाओं से भी अवगत हुआ। स्वामी विवेकानन्द की वाग्मिता एवं उनके हिन्दू धर्म की व्याख्या ने मेरे अन्दर जो हिन्दू होने का गौरव उद्बुद्ध किया था, उसे ईसाई संस्थाओं में हिन्दू धर्म के प्रति किये जाने वाले व्यवहार से बड़ी ठेस पहुँची। मैं यह कल्पना तक नहीं कर सकता था कि वे हिन्दू तपस्वी एवं शिक्षक सच्चे अर्थों में धार्मिक नहीं थे जिन्होंने भारत की उस महान् संस्कृति के साथ विश्व का सम्पर्क स्थापित कराया, जो हमारे ज्ञान एवं आचार के मूल में अधिकांशतः

विद्यमान है। मुझे ऐसा लगता था कि अपनी प्राचीन पारिवारिक परम्पराओं और धार्मिक विधि-विधानों से परिचित निर्धन एवं अशिक्षित ग्रामीण लोग स्वच्छन्द आरामपसन्द जीवन और उसके कार्य-व्यापारों में रुचि लेने वाले बुद्धिजीवियों की अपेक्षा विश्व के आध्यात्मिक रहस्य से अधिक परिचित हैं। वे उन प्राचीन सत्यों एवं सारगर्भित सूक्तियों से पूर्णतः परिचित थे, जो सब युगों में विचारशील मनुष्यों के हृदयों में उदित हुई हैं। मानव-जीवन अल्प है और प्रसन्नता अनिश्चित। धनी और निर्धन सबको एक दिन काल का ग्रास बनना है। सच्चा ज्ञान अपने अज्ञान को जानना है। धन-सम्पत्ति से सन्तोष की महिमा कहीं अधिक है, एक शान्त, प्रफुल्ल एवं प्रसाद-परिपूर्ण मन सभा-सोसाइटियों की वाहवाही से कहीं अधिक प्रशंस्य है। मिथ्या विश्वासी भारतीय महिला कई प्रकार के भयों से ग्रस्त हो सकती है, परन्तु शताब्दियों के प्रशिक्षण के कारण, उसका अपना गौरव है, सुकोमल सुसंस्कृत शालीनता है, अद्‌भुत मानसिक सन्तुलन और उदारहृदयता है। उसकी अपेक्षा अधिक पढ़ी-लिखी महिलाओं में हमें उपर्युक्त गुणों का अभाव मिलेगा। गङ्गास्नान या पुरी के देव-दर्शन के लिए अपने जीवन की समस्त संचित पूँजी को लुटा देने वाले, बनारस या कैलाश के दर्शनों के लिए असीम कष्ट झेलने वाले एक ग्रामीण तीर्थयात्री के हृदय में इस विश्वास की ज्योति सदा जगमगाती रहती है कि इंसान केवल रोटी के सहारे ही जिन्दा नहीं रहता। हमारा युग दिखावट, कृत्रिमता और मिथ्या आडम्बर का युग है। अपने फैशन के प्रवाह में बहकर यह देवताओं और भूतों, मूल्यों और आदर्शों की हँसी उड़ाता है। वह इन पुराने मिथ्या विश्वासों को गम्भीरता से ग्रहण नहीं करता। परन्तु हमें उन अशिक्षित

हिन्दुओं का उपहास नहीं करना चाहिए, जो यह नहीं देख सकते कि ये साधारण वस्तुएँ उन विचारों का प्रतीक हैं जिन तक बुद्धि की पहुँच नहीं है। मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि हमारे देशवासी मिथ्या विश्वासों के शिकार हैं, परन्तु मैं यह कदापि विश्वास नहीं कर सकता कि उनमें धार्मिक भावना नहीं है। प्रत्येक माता अपने बच्चे को यह शिक्षा देती है कि अगर उसे धार्मिक बनना है, तो उसे भगवान् से प्रेम करना चाहिए, पाप से दूर भागना चाहिए और दुखियों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए, उनकी सहायता करनी चाहिए। हमने अपना वक्त गुज़ारने के असंख्य तरीके आविष्कृत कर लिये हैं। परन्तु हमारे प्राचीन हिन्दुओं का समय-यापन का तरीका इन तरीकों से किसी भी हालत में कम बुद्धिमत्तापूर्ण नहीं है। शाश्वत सत्यों पर मनन करना, अपने मनश्चक्षुओं से दिव्य परमोच्च सत्ता के दर्शनों के लिए प्रयत्नशील रहना, और पूर्णता की प्राप्ति के लिए सचेष्ट रहना—क्या यह क्षुद्र जीवन है ?

मेरी धार्मिक वृत्ति ने मुझे कभी भी इस बात की आज्ञा नहीं दी कि मैं मानव आत्मा द्वारा पवित्र समझी जाने वाली बातों के बारे में जल्दबाजी में कोई अविवेकपूर्ण मत अभिव्यक्त करूँ। सब मतों के लिए सम्मान की भावना, आत्म-सम्बन्धी विषयों में प्रारम्भिक शिष्टता का पालन—शताब्दियों के अनुभव के बाद निर्मित हिन्दू परम्परा द्वारा, एक हिन्दू की नस-नस में समाये हुए हैं। प्रारम्भ से ही धार्मिक सहिष्णुता हिन्दू संस्कृति का प्राण रही है। जब वैदिक आर्य अन्य मतावलम्बियों के सम्पर्क में आये तो उन्होंने शीघ्र ही अपने को इन नवीन तत्त्वों के अनुकूल बना लिया। इन विदेशी तत्त्वों की पुनःरचना के द्वारा वैदिक धर्म को

अपना असाधारण स्वरूप निर्धारित करने में प्रचुर सामग्री एवं प्रेरणा मिली। हमारे प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ भगवद्गीता में यह घोषणा की गयी है कि अगर किसी व्यक्ति को दूसरे देवों के प्रति भक्ति और श्रद्धा है, तो यह भक्ति और श्रद्धा का भाव परमोच्च सत्ता के प्रति ही है। धर्म का उद्देश्य है भगवान् का शुद्ध ज्ञान प्राप्त करना। भगवान् के विषय में प्रचलित विभिन्न सिद्धान्त तो केवल उन खोज करने वालों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं, जो अभी अपने लक्ष्य पर नहीं पहुंचे। वे तो निश्चित प्रतिमाओं में निश्चित गुणों वाले भगवान् का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसके वास्तविक स्वरूप का नहीं। उदाहरण के लिए ईसाई देशों में भगवान् का जो पितृरूप था, उसने मध्ययुग में मातृरूप धारण कर लिया, जैसे कि मेरियोलेट्री में जब उसे स्वर्ग की रानी की पदवी से विभूषित किया गया, जो सर्वशक्तिमान् है। किसी एक सूत्र में भगवान् को सीमित नहीं किया जा सकता। इसके अतिरिक्त हम जिस ज्ञान के अधिकारी हैं वह हमारे विकास की अवस्था पर निर्भर करता है। संकीर्ण विचारों वाले व्यक्ति को एक महान् सत्य से अवगत नहीं कराया जा सकता। जीवन की गहराइयों में उतरने पर अपूर्ण सत्य के स्थान पर पूर्ण सत्य प्रतिष्ठित होता है। सच्चा शिक्षक हमारी दृष्टि को और अधिक गहराई तक ले जाने में हमारी सहायता करता है, वह हमारे दृष्टिकोण को बदलता नहीं। वह हमारे अपने धर्मग्रन्थों में हमारा प्रवेश सुलभ बनाता है क्योंकि "हर दिशा से मनुष्य जो भी मार्ग अङ्गीकार करते हैं, वे सब मेरे ही हैं।" विभिन्न धर्म प्रतिद्वन्द्वी या प्रतियोगी शक्तियाँ नहीं हैं अपितु वे उस महान् यात्रा में सहयात्री हैं। कोई भी धर्म ऐसा नहीं जिसमें लोगों ने भगवान् का साक्षात्कार न किया हो। एलेक्जे-

ण्ड्रिया के क्लीमैण्ट का कथन है कि सब विचारशील मनुष्यों में उस सर्वशक्तिमान् भगवान् की स्वाभाविक रूप से अभिव्यक्ति हो रही है। इस प्रकार के विश्वासों में परवरिश पाने के कारण मुझे यह देख कर बहुत दुःख होता था कि सच्चे अर्थों में धार्मिक लोग—जैसे कि निस्सन्देह अनेक ईसाई धर्म-प्रचारक थे—उन सिद्धान्तों और विश्वासों की हँसी उड़ाएँ, जिनके लिए दूसरों के हृदय में अत्यन्त श्रद्धा एवं सम्मान की भावना थी। मेरी सम्मति में, इस दुर्भाग्यपूर्ण चलन के विषय में, ईसामसीह की शिक्षाओं या उदाहरण द्वारा समर्थन नहीं मिलेगा, यद्यपि उनके कुछ बाद के अनुयायियों ने इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित किया है। आगस्टाईन के कथनानुसार, बाइबिल के बाहर जो कुछ भी धार्मिक सत्य है, वह शैतान की कृति है, असुरों का व्यंग्यचित्र है। सब धर्मों का तुलनात्मक दृष्टि से गम्भीर अध्ययन करने वालों का ऐसा मत है कि भगवान् का साक्षात्कार सब धर्मों में सम्भव है। भगवद्विषयक समस्त सत्य का स्रोत स्वयं भगवान् है। किन्हीं विशेष व्यक्तियों को भगवान् के दर्शन होते हैं ऐसा मानना तो भगवान् के प्रेम और न्याय के विरुद्ध है। कुछ पवित्रात्माओं का यह मानना कि उनका अपना धर्म ही सर्वश्रेष्ठ धर्म है, उनकी अपनी कपोल-कल्पना है। नई विश्व-व्यवस्था में आध्यात्मिक एकाधिकारों के इस विचार का कोई स्थान नहीं है।

ईसाई आलोचकों की चुनौती से मेरे अन्दर हिन्दू धर्म के गम्भीर अध्ययन की प्रेरणा उत्पन्न हुई ताकि मैं यह जान सकूँ कि इस धर्म में कौन-सा तत्त्व जीवित है और कौन-सा निर्जीव। समय के प्रवाह ने, जिस में मेरा देश नींद से अँगड़ाई लेकर जाग रहा था, मेरे इस निश्चय को और अधिक दृढ़ किया। उन दिनों

मद्रास विश्वविद्यालय के बी० ए० तथा एम० ए० के विद्यार्थियों के लिए दर्शन-शास्त्र का जो पाठ्यक्रम निर्धारित था, उसमें भारतीय विचार-पद्धति और धर्म का अध्ययन समाविष्ट नहीं था। अब भी भारतीय विश्वविद्यालयों में दर्शन-शास्त्र के विद्यार्थियों को भारतीय दर्शन के विषय में बहुत कम बताया जाता है। एम० ए० की परीक्षा के लिए मैंने 'वेदान्त में नीतिशास्त्र' विषयक एक निबन्ध तैयार किया, जिसमें इस आरोप का उत्तर दिया गया था कि वेदान्त में नीतिशास्त्र का कोई स्थान नहीं है। सन् १९०८ में, जब मेरी उम्र केवल २० वर्ष की थी, मुखपृष्ठ पर मेरे नाम के साथ जब यह पुस्तक प्रकाशित हुई, तो उस समय मुझे बहुत अधिक प्रसन्नता हुई थी, परन्तु अब उस कृति को देखने पर मुझे शर्म महसूस होती है कि मैंने कभी ऐसी पुस्तक लिखी थी। सब से अधिक आश्चर्य तो मुझे उस समय हुआ जब मेरे शिक्षक एवं विचारक प्रो० ए० जी० हाग ने जो अपने धार्मिक विषयों के गूढ़ ज्ञान के लिए अत्यन्त विख्यात हैं, मुझे एक प्रमाणपत्र दिया, जिसे अब भी मैं एक अमूल्य निधि की तरह संजोये हुए हूँ। इस प्रमाणपत्र में प्रोफेसर महोदय ने अपने विचार अभिव्यक्त करते हुए लिखा था, "अपने अध्ययन के द्वितीय वर्ष में, एम० ए० की डिग्री के लिए जो निबन्ध उसने तैयार किया है, उससे यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि दार्शनिक समस्याओं के मुख्य पक्षों की गहराई में जाने की उसकी योग्यता अभूतपूर्व है और उलझे हुए तर्कों को ग्रहण करने की क्षमता के साथ-साथ उसे अँग्रेजी भाषा पर भी अच्छा अधिकार है।" इस छोटे से निबन्ध में मेरे विचार की सामान्य धारा की ओर संकेत मिलता है। धर्म का प्रतिष्ठापन एक युक्तियुक्त जीवन के रूप में होना चाहिए। अगर

आत्मा को इस संसार में भटकना नहीं है, केवल एक कैदी या भगोड़े के रूप में ही नहीं रहना है, हमारी लौकिक आधारशिलाएँ अत्यन्त सुदृढ़ होनी चाहिएँ और हमें अत्यन्त कुशलता से इनकी सुरक्षा करनी चाहिए। युक्तियुक्त विचारों, फलदायी क्रियाओं और समुचित सामाजिक संस्थाओं के रूप में धर्म की अभिव्यक्ति होनी चाहिए।

अप्रैल, १९०९ से, जब मद्रास प्रेज़ीडेण्सी कालिज के दर्शन विभाग में मेरी नियुक्ति हुई, मैं दर्शन का अध्यापक रहा हूँ और भारतीय दर्शन तथा धर्म का अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करता रहा हूँ। मुझे शीघ्र ही यह विश्वास हो गया कि आत्म-अनुभव ही धर्म है, जिसे किसी अन्य वस्तु के साथ नहीं मिलाया जा सकता, नैतिकता के साथ भी नहीं, यद्यपि एक ऊँचे प्रकार की नैतिकता के माध्यम से यह अपनी अभिव्यक्ति किए बिना नहीं रह सकता। धर्म तो मुख्यतः हमारे आन्तरिक जीवन से सम्बद्ध है। इसका उद्देश्य उस अध्यात्म तत्त्व की प्राप्ति है जो जीवन को व्यर्थ की वस्तुओं और भयंकर निराशा से ऊपर उठाता है। धर्म को तो इस मानदण्ड से हमें मापना है कि क्या यह मूल्यों को सुरक्षित रखता है, जीवन को सार्थक बनाता है, और हम में साहसिक कृत्यों के सम्पादन के लिए आत्म-विश्वास उत्पन्न करता है। इसकी जड़ें भावना, संकल्प-शक्ति या बुद्धि की अपेक्षा मनुष्य की आत्मा में अधिक गहरी गयी हुई हैं। आत्मा की गहराइयों में पहुँचने पर उस दिव्य सत्ता के दर्शन होते हैं। धर्मोपदेशकों का कथन है, "भगवान् ने मानव-हृदय में शाश्वत सत्य को प्रतिष्ठित किया है। अनन्त की अनुभूति धर्म का आधार है। यह अनुभूति, आँखें जो देखती हैं और कान जो सुनते हैं, उनसे संतुष्ट नहीं होती।

यह हमें इस भौतिक संसार से परे एक ऊँचे ससार की ओर ले जाती है।" संभव है एक व्यक्ति नैतिक नियमों और धर्म का पालन करता हो, परन्तु जब तक उसे यह आशा और विश्वास नहीं है कि यह विश्व एक आध्यात्मिक दिशा में जा रहा है, तब तक हम उसे धार्मिक नहीं कह सकते। धर्म वास्तविक सत्ता का वह ज्ञान है, वह अन्तर्दृष्टि है जो न केवल हमारी कम या अधिक शक्तिशाली बौद्धिक प्रेरणा को संतुष्ट करती है, अपितु जो आत्मा के वास्तविक गौरव की अनुभूति के लिए और इसकी सुरक्षा के लिए शक्ति प्रदान करती है। इस ध्येय की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक साधना एवं नैतिक नियमों के पालन की आवश्यकता है। भगवान् के दर्शन के लिए हृदय को शद्ध करने की आवश्यकता है। सत्य ज्ञान के लिए पाण्डित्य की नहीं, बाल-सुलभ सरल-हृदयता की आवश्यकता है। मन के पवित्रीकरण की प्रक्रिया में हमें अपने आचार का विशेष रूप से ध्यान रखना होगा, तभी हम भगवान् के चरणारविन्दों में पहुँच सकेंगे। जब लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है, आत्मा प्रकाशमान हो उठती है और समस्त जीवन को जगमगा देती है, चरित्र को ऊँचा बनाती और शक्ति से भर देती है।

हिन्दू धर्म की चाहे जो भी कार्यपद्धति हो, हिन्दू धर्म को अलौकिक या पारलौकिक नहीं समझा जा सकता। इसके अनुसार धर्म का उद्देश्य भगवान् का ज्ञान प्राप्त करना या उसके दर्शन करना है और आचारशास्त्र का उद्देश्य मानव-जीवन को अदृश्य शक्ति के अनुरूप ढालना है। ये दोनों परस्पर संबद्ध हैं। अनन्त आत्मा में विश्वास इस आदर्श का प्रेरक है। यह न्यायपरायणता और पवित्रता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम द्वारा अभिव्यक्त होता है।

अध्यात्म की अनुभूति और सत्यमार्ग पर चलने की उत्कट अभिलाषा ये दोनों साथ-साथ चलते हैं।

महाभारत में एक श्लोक आता है, जिसका अभिप्राय है, आर्य का लक्षण न पाण्डित्य है, न धर्म, परन्तु केवल आचार है। हमारे देश में, दर्शन मानव-जीवन से पृथक् कोई अमूर्त्त अध्ययन नहीं है। यह मानव-जीवन में घनिष्ठ रूप से ओतप्रोत है। भारत की सभ्यता दार्शनिक ज्ञान को सामाजिक जीवन में प्रविष्ट कराने का प्रयत्न है। International Journal of Ethics—आचार-शास्त्र की अन्तर्राष्ट्रीय पत्रिका, Monist—अद्वैतवादी और Quest—खोज जैसी प्रसिद्ध पत्रिकाओं में मैं समय-समय पर जो लेख लिखता था, उनका उद्देश्य हिन्दू धर्म के आचारात्मक स्वरूप की स्थापना करना था। आध्यात्मिक मूल्यों की प्राप्ति इसी संसार में, पारिवारिक प्रेम, स्नेह और मैत्री, भक्ति और सम्मान की भावनाओं के विकास द्वारा सम्भव है। सच्चे धार्मिक पुरुषों के लिए समस्त जीवन एक पवित्र धार्मिक संस्कार है। जरूरतमन्दों और पददलितों में आशा एवं प्रफुल्लता के संचार की दृष्टि से जाति की सामान्य दशा को सुधारने और समाज को परिवर्त्तित करने के लिए किए गए आधुनिक प्रयत्न हिन्दू धर्म के साथ असङ्गत नहीं हैं अपितु वह तो इनका समर्थन करता है।

प्रायः ऐसा कहा जाता है कि हिन्दू धर्म के मायावाद का आचारशास्त्र से विरोध है। मायावाद का इस प्रकार से अर्थ करना जो आचार का विरोधी हो, युक्तियुक्त नहीं है। माया का सिद्धान्त यह प्रतिपादित करता है कि यह संसार अन्तिम सत्ता पर आश्रित है और उससे उद्भूत हुआ है। इसमें निरन्तर परिवर्त्तन होते रहते हैं जब कि वास्तविक सत्ता अपरिवर्तनशील है। सर्वोच्च

सत्ता से इसका स्तर नीचा है। किसी भी हालत में इसकी सत्ता को हमें माया या असत्ता के साथ नही मिलाना है। मायावाद के सिद्धान्त के प्रचारक शंकराचार्य ने भी अत्यन्त सावधानी से संसार के बाह्य स्वरूप को सत् ब्रह्म और असत् स्वप्नों तथा भ्रमों से पृथक् किया है। इसके अतिरिक्त वेदान्त के अन्य भाष्यकारों ने इस सीमित अर्थ में भी माया के सिद्धान्त का खण्डन किया है।

हिन्दू आचार-शास्त्र और माया के सिद्धान्त के सम्बन्ध में मेरे विचारों को महाकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर के लेखों से बहुत समर्थन मिला। उनके ग्रन्थों के अध्ययन के परिणाम मैंने एक अँग्रेजी पुस्तक में संग्रहीत किये हैं जिसे लन्दन की मैकमिलन कम्पनी ने सन् १९१८ में प्रकाशित किया था। यद्यपि इस पुस्तक में अपरिपक्व युवावस्था की सब त्रुटियाँ मौजूद थीं फिर भी इसका अच्छा स्वागत हुआ। स्वयं महाकवि टैगोर ने भी महान् उदारता प्रदर्शित की। उन्होंने दिसम्बर १९१८ में लिखा, "यद्यपि मेरे सम्बन्ध में लिखी गई पुस्तक की मेरे द्वारा आलोचना को गम्भीरता से ग्रहण नहीं किया जायगा, मैं यह कह सकता हूँ कि यह मेरी आकांक्षाओं से बहुत अधिक है। आपके हार्दिक प्रयत्नों और विषय की गहराई में प्रवेश से मैं आश्चर्य-चकित हो गया हूँ और मैं आपका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ कि आपकी अत्यन्त सुन्दर, सुललित एवं भावगर्भित भाषा अनर्थक वाक्यों और पाण्डित्य-प्रदर्शन की भावना से रहित है।"

सन् १९१८ में मैसूर के नवनिर्मित विश्वविद्यालय में मेरी दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक के पद पर नियुक्ति हुई। अपने पूर्व अध्ययन के परिणामस्वरूप मेरा धर्म के आध्यात्मिक एवं उदार

स्वरूप को स्वीकार करने की ओर झुकाव हुआ। धर्म कोई व्यक्तिगत साक्षात्कार नहीं है और न ही यह सार्वजनिक अधिकारी द्वारा आरोपित आदेश है, अपितु यह तो बुद्धि के प्रकाश और अनुभूति की अन्तर्दृष्टि से स्वभावतः उद्भूत भाव है। तब मुझे यह अन्तःप्रेरणा हुई कि दर्शन हमें धर्म के आध्यात्मिक या जिसे तब मैं निरपेक्ष की संज्ञा से सम्बोधित करता था, दृष्टिकोण की ओर ले जाता है। अगर दर्शन का प्रयोग अनेकत्ववादी आदर्शवाद के समर्थन में किया जाता है, जो भगवान् को अमरों का प्रधान अङ्गीकार करता है और मनुष्यों को शाश्वत आत्माएँ, जिनकी अद्वितीय स्थिति सदा बनी रहेगी, तो यह हमारी धार्मिक पूर्व-धारणाओं से प्रभावित है। मैंने 'Mind' पत्रिका में एम० बर्गसन के दर्शन पर एक लेखमाला लिखी जिसमें यह दिखाने का प्रयत्न किया कि वह एक निरपेक्षवादी था। इसी दृष्टिबिन्दु से मैंने लीबनिज, जेम्स वार्ड, विलियम जेम्स, रुडोल्फ यूकेन, हेस्टिंग्स रैशडाल, बर्ट्रेण्ड रसेल, लार्ड बालफोर इत्यादि की दार्शनिक विचारधाराओं की समीक्षा की और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि उनके अनेकत्ववाद या अनेकत्ववादी ईश्वरवाद के पूर्ण समर्थन का कारण दर्शन के क्षेत्र में धर्म का सम्मिश्रण कराना था। यह निबन्ध सन् १९२० में मैकमिलन द्वारा The Reign of Religion in Contemporary Philosophy (समकालिक दर्शन में धर्म का स्थान) नाम से ग्रन्थ रूप में प्रकाशित हुआ। इसका जोरदार स्वागत हुआ। प्रसिद्ध आलोचकों द्वारा इसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की गयी। जे० एच० म्यूरहैड, जे० एस० मैकेन्जी, और जे० ई० सी० मैकटैग्गर्ट जैसे प्रसिद्ध दार्शनिकों की मेरे मत का समर्थन करने वाली समालोचनाओं के साथ-साथ

अमरीका के प्रो० हिनमैन ने अमरीकी दार्शनिक संघ के अपने अध्यक्षीय भाषण में "दो प्रतिनिधि आदर्शवादी—बोसान्क्वे और राधाकृष्णन्" की विचारधाराओं का मनन करने का आग्रह किया। बोसान्क्वे के साथ अपने नाम का सम्बद्ध होना ऐसा गौरव है जिसके लिए अनेक ख्यातनामा विचारक ईर्ष्या करेंगे। न केवल भारतीय विश्वविद्यालयों में अपितु कई ब्रिटिश और अमरीकी विश्वविद्यालयों में यह पुस्तक विद्यार्थियों के अध्यात्मशास्त्र के पाठ्यक्रम में निर्धारित की गयी और दर्शनशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों के लेखक के रूप में मेरी कुछ-कुछ ख्याति हो गई।

सन् १९२१ में कलकत्ता विश्वविद्यालय में जार्ज पंचम के नाम से सम्बद्ध मानसिक एवं नैतिक विज्ञान के दर्शन शास्त्रीय प्राध्यापक पद पर मेरी नियुक्ति की गई। प्रो० जे० एच० म्यूरहैड ने, जिनका मैं अत्यन्त आभारी हूँ, अपनी प्रसिद्ध "Library of Philosophy" (दर्शन का पुस्तकालय) के लिए भारतीय दर्शन पर एक विधिवत् एवं प्रणालीबद्ध ग्रन्थ लिखने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। सन् १९०८ से लेकर इस विषय पर किये गये अध्ययन को मैंने संकलित किया और दो भागों में इसे प्रकाशित किया। इसका दूसरा संस्करण भी निकल चुका है। सूक्ष्म विवरणों को एक सृजनात्मक एवं संग्रथित रूप में संग्रहीत करना कोई सरल कार्य नहीं है। मेरी महत्त्वाकांक्षा इस ग्रन्थ में केवल भारतीय दर्शन का इतिहास प्रस्तुत करने की नहीं थी अपितु निर्वचन करने, विभिन्न दृष्टिकोणों का पारस्परिक सम्बन्ध दर्शाने और जीवन को आन्दोलित करने की थी। इसके अतिरिक्त, सभी दार्शनिक निर्वचनों में समुचित विधि यही है कि हम विचारकों का तभी निर्वचन करें जब वे सर्वोत्तम स्थिति

में होते हैं, अपनी सर्वाधिक स्पष्ट अन्तर्दृष्टि के क्षणों में जो कुछ वे कहते हैं, उसके प्रकाश में उनकी विचारधाराओं की व्याख्या करें। मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता कि हम दार्शनिक ग्रन्थकारों की समालोचना, अन्य सृजनात्मक कलाकारों की तरह, उनकी सर्वश्रेष्ठ स्फुरणाओं के आधार पर क्यों न करें। एक महान् विचारक को समझने के लिए हम में उस जैसी हार्दिक सहानुभूति, अगाध ज्ञान, दृढ़ विश्वास और प्रबल उद्वेगों का होना आवश्यक है। जब तक हम यह स्मरण करते रहेंगे कि हम आधुनिक हैं और इन पुरातन लोगों में ऐसी त्रुटियाँ और आवेश थे, जो हममें नहीं हैं, तब तक इन विचारकों के बारे में हास्यचित्र प्रस्तुत करने के अतिरिक्त हमारे हाथ कुछ भी नहीं लगेगा। नम्रता लेखन कला की जननी है, चाहे वह लेखन दर्शन के इतिहास से ही सम्बद्ध क्यों न हो। मुझे इस बात का गौरव है कि मैं मानवीय विचार की सामान्य धारा में हिन्दू विचार को प्रविष्ट कराने के प्रयत्न में कुछ सीमा तक सहायक सिद्ध हो सका। एक समय ऐसा था जब हिन्दू विचार के बारे में ऐसी धारणा थी कि यह अत्यन्त विचित्र और पुरातन है और विश्व के आध्यात्मिक जागरण में कोई भाग नहीं ले सकता। परन्तु उस धारणा का धीमे-धीमे लोप हो रहा है। प्राचीन भारतीय हमसे किसी विभिन्न जाति से सम्बन्ध नहीं रखते थे। भारतीय दर्शन को अब अध्ययन की एक आवश्यक शाखा के रूप में समझा जाने लगा और यही कारण है कि एनसाईक्लोपीडिया ब्रिटैनिका (चौदहवाँ संस्करण) के सम्पादकों ने इसे स्थान देना आवश्यक समझा और उन्होंने मुझसे भारतीय दर्शन पर एक लेख लिखने के लिए आग्रह किया।

हिब्बर्ट जर्नल में प्रकाशित अपने लेखों के द्वारा मैं इसके

संपादक डा० एल० पी० जैक्स, जो आक्सफोर्ड में मानचैस्टर कालेज के प्रिन्सिपल रह चुके हैं, के सम्पर्क में आया और उन्होंने अत्यन्त उदारतापूर्वक सन् १९२६ में "जीवन के प्रति हिन्दू का दृष्टिकोण" विषय पर उप्टन व्याख्यानमाला देने के लिए मुझे आमन्त्रित किया। मुझे उनके निमन्त्रण को स्वीकार करने का स्वर्णावसर भी मिल गया क्योंकि कलकत्ता विश्वविद्यालय ने जून १९२६ में ब्रिटिश साम्राज्य के विश्वविद्यालयों की कांग्रेस में, और सितम्बर १९२६ में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में सम्पन्न होने वाली अन्तर्राष्ट्रीय दर्शन कांग्रेस में अपना प्रतिनिधि बना कर मुझे भेजा था। यह मेरी यूरोप और अमरीका की पहली यात्रा थी और इसकी सुमधुर स्मृतियाँ मेरे मन में अब भी अङ्कित हैं। आक्सफोर्ड और कैम्ब्रिज, हार्वर्ड और प्रिन्सटन, येल और शिकागो तथा अन्य अनेक स्थानों में मेरा जो हार्दिक स्वागत हुआ उसकी याद कभी भुलाई नहीं जा सकती।

"जीवन के प्रति हिन्दू का दृष्टिकोण" व्याख्यानमाला में मैंने हिन्दू धर्म का एक प्रगतिशील ऐतिहासिक आन्दोलन के रूप में प्रतिनिधित्व किया जिसका अब भी निर्माण हो रहा है। इस धर्म के अनुयायी किसी धरोहर के संरक्षक नहीं हैं अपितु एक जलती मशाल को हाथों में लिये हुए सन्देशवाहक हैं। हिन्दू धर्म की दुर्बलताएँ जिन्होंने इस संस्था को कलंकित किया है और जो आज सामाजिक उन्नति के मार्ग में बाधक बन कर खड़ी हैं, का कारण परम्परा और सत्य को समुचित रूप में न समझना और उन्हें परस्पर मिला देना है। हमें सत्य की आत्मा को सुरक्षित रखना है जो हमें विशुद्ध सत्य की ओर ले जाएगी। भगवान् यह नहीं कहता, "मैं परम्परा हूँ", परन्तु वह कहता है, "मैं सत्य

हूँ।" सत्य इसके महत्तम शिक्षकों से भी महान् होता है। हमें यह अनुभव करना होगा कि किसी जाति का इतिहास रीति-रिवाजों और संस्थाओं से भरा होता है जो पहले अत्यन्त उपयोगी और अमूल्य थीं परन्तु बाद में जो निर्जीव हो गईं। हमारे समाज में वर्त्तमान भयंकर त्रुटियों पर हमें निर्दयतापूर्वक कुठाराघात करना होगा। न केवल नैतिकता के क्षेत्र में अपितु बुद्धि के क्षेत्र में भी, हिन्दू धर्म ने सदा प्रगति पर बल दिया है। हमें इसे निराशावादी या भाग्यवादी नहीं समझना चाहिए। कर्म का सिद्धान्त इस बात की पुष्टि करता है कि हमारे वर्तमान में हमारा भूत अन्तर्हित है। जब हम अचेतन रूप से या यान्त्रिक रूप से भूत की प्रवृत्तियों का अनुसरण करते हैं, उस समय हम अपनी स्वतन्त्रता का उपयोग नहीं कर रहे होते। परन्तु हम उस समय स्वतन्त्र होते हैं, जब हमारा वैयक्तिक अहं शासक का रूप धारण कर लेता है। मैं यह आवश्यक नहीं समझता कि मैं हिन्दू धर्म के विरुद्ध उठाई गई विभिन्न समालोचनाओं का यहाँ निर्देश करूँ क्योंकि इनमें से मुख्य समालोचनाओं पर उस ग्रन्थ में विचार किया गया है।

सितम्बर १९२६ में हार्वर्ड विश्वविद्यालय की दर्शन कांग्रेस में मेरे भाषण का विषय था "आधुनिक सभ्यता में अध्यात्म का अभाव", जिसकी चर्चा मैंने अपनी **कल्कि या सभ्यता का भविष्य** शीर्षक पुस्तिका में विस्तार से की है। पिछली कुछ दशाब्दियों में संसार बड़ी द्रुत गति से और पूर्णता से अपने बाह्य पक्षों में बदला है। विज्ञान हमारे बाह्य जीवन का निर्माण करने में हमारी सहायता करता है, परन्तु आत्मा को शक्तिशाली बनाने और उसे सुसंस्कृत करने के लिए दूसरे प्रकार के अनुशासन की आवश्यकता होती है। यद्यपि हमने ज्ञान और वैज्ञानिक आविष्कारों में

अभूतपूर्व उन्नति कर ली है, हम आचारात्मक एवं आध्यात्मिक जीवन में पिछली पीढ़ियों के स्तर से कदापि आगे नहीं बढ़े हैं। कुछ दृष्टियों से तो संभवतः हम उनके मानदण्डों से बहुत नीचे गिर गये हैं। हमारी प्रकृति यान्त्रिक बनती जा रही है, हम अन्दर से खोखले हो गये हैं, समुदाय में केवल अणुमात्र बन कर रह गये हैं, एक भीड़ के सदस्य मात्र। व्यवहार-विज्ञान हमें बतलाता है कि आज के मनुष्य का कोई आन्तरिक जीवन नहीं है और एक प्रेक्षक के दृष्टिबिन्दु से उसे पूर्णतः समझा जा सकता है।

समाज के पुनर्निर्माण के हाल ही के कुछ प्रयत्नों में यह भय सम्मिश्रित है। यद्यपि मनुष्य ने प्रकृति को अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप वश में कर लिया है, यद्यपि उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में आधुनिक विज्ञान के प्रयोग ने मनुष्य को अनेक भौतिक सुख-सुविधाएँ प्रदान की हैं और गरीबी को एक अतीत की चीज सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, फिर भी अधिकांश जनता गरीबी और भुखमरी का शिकार है। इस शोचनीय हृदयद्रावक दशा का कारण मैत्री एवं सहयोग का अभाव है। रूस के साम्यवादी प्रयोग के विषय में हमारे चाहे कैसे ही विचार क्यों न हों, यह फिर भी सबको जीवन की आधारभूत आवश्यक भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति कराने की दिशा में एक सच्चा और ईमानदारी से पूर्ण प्रयत्न है। रूस के लोग निर्धनता और ऐश्वर्य की भयंकर असमानताओं को अनिवार्य नहीं समझते। फासिस्टवाद भी एक सच्चे सामुदायिक जीवन के निर्माण, शक्ति, धन-संपत्ति तथा अवसरों के अधिक समवितरण के लिए प्रयत्नशील है। इन प्रयत्नों का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम पारस्परिक संघर्ष और व्यक्तिगत स्वतन्त्रता का हनन है। सब मनुष्यों को एक ही मानदण्ड से मापने

की प्रवृत्ति है, आत्म-विश्वास का अभाव है, और समूहों में मुक्ति खोजने की ओर प्रवृत्ति है। न केवल मनुष्य को अपनी इच्छानुकूल अपने जीवन का निर्माण करने की स्वतन्त्रता से वंचित किया गया है अपितु उसे अपनी इच्छानुसार विचार करने और अपने विचारों तथा सम्मतियों को अभिव्यक्त करने की स्वतन्त्रता से भी वंचित किया गया है। समाज एक कैदखाना बन गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जनता के आर्थिक शोषण को रोकने की दिशा में गम्भीर प्रयत्न किये जा रहे हैं। परन्तु अगर यह सब कुछ मानव की अधोमुखी प्रवृत्तियों—स्वार्थ और घृणा, उद्धतता और कट्टरता को उकसाकर किया जायगा तो यह आदर्श समाज-व्यवस्था भी अमानवीय होगी। हमें एक न्यायोचित आर्थिक समाज-व्यवस्था की स्थापना के लिए प्राणपण से प्रयत्न करना चाहिए परन्तु इसके साथ ही हमें यह भी अपने हृदय-पट्ट पर अङ्कित कर लेना चाहिए कि आर्थिक मनुष्य ही पूर्ण मनुष्य नहीं है। एक पूर्ण मनुष्य के निर्माण के लिए हमें प्रेम और भक्ति-भाव से आप्लावित तथा उद्बुद्ध मानवता की स्वतन्त्र सेवा में तत्पर आत्माओं में उदात्त भावनाओं और आध्यात्मिक आनन्द की सृष्टि करनी होगी। यदि हम इस संसार में व्यवस्था और न्याय का शासन स्थापित करना चाहते हैं, तो हमें आन्तरिक शान्ति की खोज करनी होगी। भौतिक क्षमता और बौद्धिक दक्षता भयानक सिद्ध हो सकती है, अगर हममें आध्यात्मिक शक्ति का अभाव है। ऑल्डुअस हक्सले ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Brave New World' में एक ऐसे संसार का चित्रण किया है जिसमें साध्यों और साधनों का परस्पर पूर्ण समायोजन होगा, साथ ही इसका अर्थ होगा बोतलों में मनुष्यों का पालन-पोषण, समस्त

पारिवारिक प्रेम, कला और साहित्य, दर्शन और धर्म का लोप अर्थात् समस्त आत्मिक वस्तुओं की मृत्यु। वैयक्तिक अनुभव के आन्तरिक संसार का विलुप्त होना हमारी प्रगति का चिह्न नहीं है। सभ्यता के वर्त्तमान संकट का कारण यही है कि हमने आचारात्मक और आध्यात्मिक आदर्शों को बिलकुल विस्मृत कर दिया है।

सभ्य संसार में आज ऐसी घटनाएं घटित हो रही हैं, जिनसे हमें मध्ययुग की भयंकरतम घटनाओं का फिर से स्मरण हो आता है। भगवान् को सिंहासनच्युत करके उसके स्थान पर जाति और राष्ट्र के नए देवताओं की स्थापना की जा रही है। सामूहिक कपोल-कल्पनाओं द्वारा मनुष्यों की आत्माओं को दूषित और विकृत कर दिया गया है। वे उनकी राष्ट्रभक्ति को नियन्त्रित करती हैं, दैवी आशाओं का संचार करती हैं, एक बाह्य एवं आत्मा से महत्तर उद्देश्य के लिए मनुष्यों की प्रबल एवं आवेशपूर्ण भक्ति की माँग करती हैं और वे उस धर्म के रूप में समझी जाती हैं जो जीवन को एक चमत्कारपूर्ण अर्थ प्रदान करने की शक्ति रखता है और उसे कर्मक्षेत्र में उतरने के लिए प्रेरणा प्रदान करता है। मानव जाति की एकता में विश्वास करने वाले और अपने पड़ोसियों के सुख-दुःख को अपना सुख-दुःख समझने वाले थोड़े से उदार व्यक्तियों पर वे लाखों व्यक्ति हावी हो जाते हैं, जिन्हें इस विचारधारा में प्रशिक्षित किया गया है कि मानवता एक प्रतिद्वन्द्वी जातियों का समूह है जिनकी शक्ति-परीक्षा युद्ध द्वारा होती है। राज्यों की भयानक प्रतिद्वन्द्विताओं का ही यह परिणाम है कि उनमें शस्त्रसंचय की दृष्टि से जबर्दस्त प्रतियोगिता हो रही है। हमें अपने को इस भुलावे में नहीं रखना चाहिए

कि शस्त्रों के संचय का यह अर्थ नहीं है कि उनका प्रयोग भी किया जायगा। हम उन्हें बिना प्रयोग में लाये नहीं रह सकते, जैसे कि भोजन खाने वाला पशु मल-विसर्जन किये बिना नहीं रह सकता। जिस पैमाने पर युद्ध की तैयारियाँ जारी हैं और मनुष्यों की भावनाओं को उकसाया जा रहा है, एक ऐसा भीषण युद्ध सामने दिखाई देता है, जिसकी तुलना में पिछला युद्ध कुछ भी नहीं था।

यह कदापि बुद्धिमत्ता नहीं होगी कि हम इस विनाश को अपरिहार्य समझ लें और इसके विरुद्ध अपनी जद्दोजहद को बिलकुल बन्द कर दें। इस प्रकार तो हम निश्चित रूप से विनाश को आमन्त्रित कर रहे होंगे। मानवीय कार्यकलापों में शान्ति के अतिरिक्त कुछ भी अनिवार्य नहीं है। यह विश्व की सबसे प्रबल आवश्यकता है। अनेक विख्यात वैज्ञानिक भूकम्प जैसी प्राकृतिक घटनाओं के, जिन पर विजय पाने में मनुष्य अशक्त सिद्ध हुआ है, अन्तर्हित कारणों की खोज में अपना समस्त जीवन लगा देते हैं। युद्ध तो मानवीय घटनाएँ हैं, और हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम उनके मूलभूत कारणों को खोज निकालें।

समाज के वर्तमान संगठन में आधारतः कुछ गलती है। यह पर्याप्त रूप से प्रजातान्त्रिक नहीं है। प्रजातन्त्र का आधार मनुष्य के गौरव को स्वीकार करता है। यह इस बात की पुष्टि करता है कि कोई व्यक्ति इतना श्रेष्ठ नहीं हो सकता कि उसे दूसरे पर शासन करने के लिए निरंकुश शक्ति सौंप दी जाय और न ही कोई राष्ट्र इतना श्रेष्ठ है कि उसे दूसरे राष्ट्र पर शासन करने के अधिकार से मण्डित किया जाय। परन्तु राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्रों में समाज का वर्त्तमान संगठन इस सिद्धान्त

पर कार्य कर रहा है कि शक्तिशाली राष्ट्र जो चाहे कर सकते हैं और कमजोर राष्ट्रों को कष्ट सहन करने ही होंगे। राष्ट्र राज्य और साम्यवादी सिद्धान्तों में अन्तर्हित मूल्यों के संघर्षरत मानदण्ड और जीवन की विरोधी योजनाएँ, पीड़ित समूहों और व्यक्तियों के उज्ज्वल भविष्य निर्माण की दिशा में किये गये भद्दे और बोझिल प्रयत्न हैं। विश्व के असंख्य अशिक्षित एवं पददलित व्यक्तियों के हृदय में एक गहरी और अनियन्त्रित बेचैनी छायी हुई है। उनमें अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिए एक नयी चेतना जाग रही है और वे अपने शोषकों के हाथों से इन अधिकारों को हस्तगत करने के लिए कृत-संकल्प एवं कृत-परिकर हैं।

सभ्यता आत्मा का कार्य है, शरीर या मन का नहीं। ज्ञान और शक्ति की सिद्धियाँ ही पर्याप्त नहीं हैं, आत्मा और नैतिकता के कृत्य अत्यन्त आवश्यक हैं। मनुष्य को एक क्रियाशील सोद्देश्य शक्ति बनना है। उसे प्रगति के इस स्वयंचालित नियम में अब विश्वास नहीं करना होगा जो यह मानता है कि मानवीय आदर्शों और नियन्त्रण के बिना भी प्रगति सम्भव है। मनुष्य मानवीय इतिहास की प्रगति का एक उदासीन दर्शक मात्र ही नहीं है, अपितु विश्व को अपने आदर्शों के अनुकूल ढालने वाला एक कर्मठ कार्यकर्ता है। प्रत्येक युग को हम अपने आदर्शों के अनुरूप बना सकते हैं। हमारी सभ्यता का यही दोष है कि वर्त्तमान का अनुसरण करने की चिन्ता में हम स्थायी एवं शाश्वत सत्यों की उपेक्षा कर रहे हैं। मनुष्य जीवन की सार्थकता भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति में ही नहीं है। मानव-जीवन का पूर्ण एवं जटिल विस्तार-क्षेत्र उस दशा में संकीर्ण, निरुद्देश्य और असन्तोषप्रद हो

जाता है, जब इसमें शाश्वत की भावना अन्तर्हित नहीं होती। हमें अपने समस्त सम्बन्धों का निर्माण एक भाईचारे की सद्भावना पर करना है और इस नियन्त्रक सिद्धान्त को सदा स्मरण रखना है कि एक शाश्वत पृष्ठभूमि के बिना हमारा सांसारिक जीवन सर्वथा निरुद्देश्य है। सच्चाई, ईमानदारी और निःस्वार्थभाव में वृद्धि के साथ ही सभ्यता की वृद्धि होती है। समाज के परिवर्त्तन का एकमात्र प्रभावी उपाय व्यक्तियों का परिवर्त्तन है जो अत्यन्त कठिन है और यह प्रक्रिया धीरे-धीरे संपन्न होती है। अगर हम उन वस्तुओं को प्राथमिकता देंगे जिन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए, तो धैर्य और जद्दोजहद के द्वारा हम परिस्थितियों पर विजय पा सकेंगे और उन्हें अपने अनुकूल ढालने में समर्थ होंगे। आचारात्मक एवं आध्यात्मिक आदर्शों के लिए प्रयत्नशील मानवता ही वैज्ञानिक ज्ञान को सभ्यता के सच्चे लक्ष्यों के लिए प्रयोग कर सकती है।

मुझे अपने इस दृष्टिकोण को दार्शनिक रूप में प्रस्तुत करने का अवसर उस समय प्राप्त हुआ जब सन् १९२९ में मैनचेस्टर कालेज, आक्सफोर्ड में प्रिन्सिपल जे० ऐस्टलिन कारपैण्टर द्वारा रिक्त स्थान के लिए मुझे निमन्त्रित किया गया। मैंने आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के सामने तुलनात्मक धर्म पर भाषण दिये। इस अवसर पर, लन्दन तथा मैनचेस्टर के विश्वविद्यालयों में, बड़ी सभाओं के सामने "जीवन का आदर्शवादी दृष्टिकोण" विषय पर मुझे हिब्बर्ट व्याख्यानमाला देने का गौरव प्रदान किया गया। इन व्याख्यानों में दर्शन की कुछ गम्भीर समस्याओं के विषय में मेरे विचार प्रस्तुत हैं। इनमें संसार के बौद्धिक धरातल में होने वाले परिवर्त्तनों तथा उस अवस्था पर

विचार किया गया है जिसमें से धर्म और सामाजिक जीवन गुजर रहे हैं। झूठे देवी-देवताओं में विश्वास करने वाले और केवल बाह्य क्रिया-कलाप पर बल देने वाले, आडम्बरयुक्त मिथ्या धर्म के दिन अब लद गये हैं। मनुष्य अब सच्चे और वास्तविक धर्म की माँग करते हैं। वे जीवन की गहराइयों में उतरना चाहते हैं, वास्तविकता को छिपाने वाले परदों का वे उद्घाटन करना चाहते हैं, और वे उस तत्त्व की खोज में हैं जो जीवन के लिए, सत्य के लिए और पुण्य मार्ग के लिए अत्यन्त आवश्यक है। बाह्य आचारों पर बल देने वाले यान्त्रिक धर्म का लोप हो गया है और उसके स्थान पर, इस बाह्याचारी धर्म से दूर ले जाने वाली अनेक चीजें उद्भूत हुई हैं पर उनमें मानव आत्मा की प्राकृतिक गौरव-गरिमा पर पर्याप्त बल नहीं दिया गया। लौकिक बुद्धिमत्ता धर्म का उचित स्थानापन्न नहीं है।

मेरी दृष्टि में आधुनिक सभ्यता भी इसी दोष से पीड़ित है कि इसमें आत्मतत्त्व का अभाव है। राजनीति और अर्थशास्त्र आचारशास्त्र तथा धर्म से अनुप्राणित नहीं हैं। अगर हमें मानव-जीवन में खोई हुई आत्मा का पुनः प्रवेश कराना है तो हमें एक नए शक्तिशाली धर्म का विकास करना होगा, जो हमें बुद्धि के अधिकारों का समर्पण करने के लिए नहीं कहेगा। ऐसे धर्म को पूर्ण स्वतन्त्र एवं निर्भ्रान्त आत्माएँ ही स्वीकार कर सकती हैं।

धर्म कोई मत या संहिता नहीं है अपितु यह तो वास्तविकता में एक अन्तर्दृष्टि है। यदि हम इसे बौद्धिक दृष्टिकोण के साथ गड़बड़ा देंगे तो हम भगवान् के स्वरूप की विभिन्न व्याख्याओं के लिए परस्पर झगड़ने वाले सशस्त्र समाजों के पुरातन व्यवहार को न्यायसंगत सिद्ध कर रहे होंगे। धर्म के संस्थापक, सन्त और ऋषि

महान् पैगम्बर थे, जो उस आध्यात्मिक सत्ता के साक्षात् संपर्क में आए थे, जो इन्द्रियातीत है।

आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा ही आध्यात्मिक सत्ता का निश्चय होता है। यह आध्यात्मिक ज्ञान केवल इन्द्रियग्राह्य या विचारात्मक नहीं होता। यह ज्ञान अ-तार्किक नहीं होता अपितु अधि-तार्किक होता है। यह अन्तर्दृष्टि या स्फुरणात्मक ज्ञान होता है। हेगल और अन्य बुद्धिवादियों ने आलोचनात्मक बुद्धि के अर्थ में बुद्धि को जो सर्वोच्च स्थान प्रदान किया है, वह युक्तियुक्त नहीं है। हमारे युग का प्रवाह और इसके कार्य करने की पद्धतियाँ एक वैज्ञानिक बुद्धिवाद का समर्थन करती हैं। भौतिक साधनों की खोज और उनके क्रियात्मक प्रयोग की ओर ही हमारा ध्यान अत्यन्त प्रचण्ड रूप से केन्द्रित है। प्रत्यक्ष और तकनीकी प्रणाली पर इतना केन्द्रित ध्यान हमारी सभ्यता के इतिहास में संभवतः अद्वितीय है। यह निर्विवाद है कि इसने मानव जाति को बहुत लाभ पहुँचाया है। परन्तु जो लोग वर्णनात्मक विज्ञानों की विधियों और विचारों को प्रयोग में लाते हैं, वे भी स्वयं वैज्ञानिक ज्ञान की सीमाओं और मूल्य का प्रश्न उठाते हैं। प्रकृति के नियन्त्रण के लिए साधनों के रूप में विज्ञान के सिद्धान्त अवश्य उपयोगी हैं, परन्तु वे वास्तविक सत्ता के रहस्योद्घाटन में असमर्थ हैं। इलैक्ट्रॉन और प्रोटॉन वास्तविक सत्ता के रहस्य को स्पष्ट नहीं करते। इसके अतिरिक्त परमात्मा और आत्मा को गणित के समीकरण के सदृश नहीं समझा जा सकता। हमारे प्रगाढ़ विश्वास, जिनके लिए कभी-कभी हम प्राणोत्सर्ग करने से भी नहीं हिचकिचाते, हमारी बौद्धिक गणनाओं के परिणाम नहीं होते। वैयक्तिक जीवन के निर्णायक अनुभवों को सूत्रों के रूप में नहीं समझा जा सकता।

उनकी संचालक शक्ति तो वास्तविकता के साथ आवश्यक एवं घनिष्ठ संपर्कों में अन्तर्हित होती है जो हमें उन गहराइयों में ले जाते हैं जो हमारे जीवन को सर्वथा परिवर्त्तित कर देती है। वैज्ञानिक बुद्धिवाद के अनुसार भी हमें ऐसे अनुभवों की वास्तविकता को स्वीकार करना पड़ता है और मात्र वैज्ञानिक ज्ञान की बाह्यता एवं अपूर्णता को अङ्गीकार करना पड़ता है। यह स्फुरणात्मक ज्ञान इस ओर निर्देश करता है कि हमारी मानसिक रचना इस प्रकार की नहीं हुई है कि हम अन्तर्दृष्टि द्वारा वास्तविक सत्ता का ज्ञान प्राप्त न कर सकें।

हिन्दू दर्शन सदा ही इस सत्य पर बल देता रहा है कि अन्तर्दृष्टि द्वारा वास्तविक सत्ता का साक्षात्कार संभव है, विश्लेषणात्मक बुद्धि द्वारा नहीं। इस विश्वास की पुष्टि में हिन्दू विचारकों को अन्य दार्शनिकों जैसे प्लेटो और प्लोटिनस, सेण्ट पाल और सेण्ट आगस्टाईन, ल्यूथर और पास्कल से भी समर्थन प्राप्त है। आधुनिक विज्ञान द्वारा स्वीकार की जाने वाली सृष्टि-प्रक्रिया की प्रकृति ही, जो निरन्तर नवीन घटनाओं को जन्म दे रही है, स्फुरणात्मक ज्ञान की आवश्यकता की ओर निर्देश करती है। जीवन ज्यामिति का कोई सरल चित्र नहीं है। जीवन का सार सृजनात्मकता है। यह एक जीवित सृष्टि रचना है, कार्य और कारण का निर्जीव सम्बन्ध नहीं। दृश्य वस्तुओं के पीछे सृष्टि करने की, उत्पन्न करने की, जीवित करने की और छिपे हुए कोष में से किसी नवीन वस्तु को बाहर लाने की आन्तरिक प्रेरणा विद्यमान रहती है। हम कभी भी सृजनात्मक आत्मा के स्रोतों का विश्लेषण न कर पायेंगे। यदि वास्तविक सत्ता की यथार्थ स्थिति है, तो सर्वोच्च ज्ञान केवल अन्तर्दृष्टि द्वारा ही संभव है। पुनरपि इस अन्तर्दृष्टि में पर्याप्त

बौद्धिकता है। वास्तविक सम्बन्धों की शृंखला कहीं भी नहीं टूटने पाती यद्यपि हमारी सीमित दृष्टि कारणों और कार्यों की शृंखला को नहीं देख पाती। विश्व एक सृजनात्मक गतिविधि है जो निरन्तर एवं बौद्धिक है। विश्व की बौद्धिकता यद्यपि बुद्धिग्राह्य है परन्तु इसके रहस्य को केवल स्फुरणा द्वारा ही जाना जा सकता है।

जैसा कि बर्गसन हमें कभी-कभी यह विश्वास दिलाते हैं स्फुरणात्मक ज्ञान बौद्धिक ज्ञान का विरोधी नहीं है स्फुरणात्मक ज्ञान ऐन्द्रियिक तरंग या उद्वेगात्मक नहीं है। स्फुरणात्मक ज्ञान में बुद्धि का बहुत बड़ा भाग होता है। यदि स्फुरणा बुद्धि द्वारा समर्थित नहीं है तो यह आत्मसन्तुष्ट सुधार-विरोधी प्रवृत्ति का रूप धारण कर लेगी। स्फुरणा सब अनुभवों की निरन्तरता और एकता को स्वीकार करती है। अन्तिम कारण के लिए बौद्धिक खोज हमें परमात्मा के विचार की ओर ले जा सकती है। स्फुरणा हमें यह बताती है कि विचार केवल विचार-मात्र ही नहीं है अपितु एक तथ्य है। पैगम्बर और धार्मिक सन्त जिन सृष्टि-सत्यों का स्फुरणा द्वारा साक्षात्कार करते हैं, उन्हें दूसरों तक पूर्ण रूप में पहुँचाना सम्भव नहीं है। बौद्धिक मत एवं स्थापनाएँ अपूर्ण अभिव्यक्तियाँ हैं और इसीलिए वे कभी-कभी एक दूसरे के साथ संघर्षरत दिखाई देती हैं।

मनुष्य का लक्ष्य अपने शरीर, मन और भावनाओं को इस आत्म-तत्त्व से परिव्याप्त करना है। अपने स्वार्थमय अहं को खोकर ही वह आत्मा की गहराइयों में प्रवेश करता है। मनुष्य अपनी सहज वृत्तियों और इच्छाओं का ही योगमात्र नहीं है। उसे एकत्व की अनुभूति करनी है। पूर्ण एकत्व के मार्ग में बाधा उपस्थित होने पर, उसमें असन्तोष एवं अविश्रान्ति का आविर्भाव होता है। जो

कुछ हम हैं और जो कुछ हम बनने की महत्त्वाकांक्षा रखते हैं, इसमें सदैव एक संघर्ष पाया जाता है। मनुष्य प्रकृति और आत्मतत्त्व के बीच अस्थिर रूप से झूलता रहता है। वह पूर्णता के लिए प्रयत्नशील है।

एकत्व की अनुभूति करने वाले पूर्ण पुरुषों का जीवन धन्य है। उनमें अवर्णनीय आनन्द और शान्ति का अजस्र स्रोत बहता है। जिस प्रकार प्रातःकाल भगवान् भुवनभास्कर के उदय होते ही विद्युत् लैम्पों की ज्योति मन्द पड़ जाती है उसी प्रकार आध्यात्मिक आनन्द के सामने हमारे भौतिक आनन्द फीके पड़ जाते हैं।

नए समाज का निर्माण उन महाप्राण पुरुषों द्वारा किया जायगा जिन्होंने अपने व्यक्तित्व का चरम विकास कर लिया है और अपने जीवनों को एकत्व की अनुभूति द्वारा पूर्ण बना लिया है। जिन महापुरुषों ने आन्तरिक शक्ति एवं पूर्णता प्राप्त कर ली है, उनके लिए यह अपूर्ण सामाजिक व्यवस्था एक चुनौती है। वे इस वसुधा पर आत्म-बलिदान की भावना द्वारा परमात्मा, प्रेम और पुण्य का साम्राज्य स्थापित करेंगे। जब तक समाज पूर्णता प्राप्त नहीं कर लेता, वस्तुतः कोई भी व्यक्ति सच्चे अर्थों में मुक्त नहीं हो सकता। अगर ऐतिहासिक प्रक्रिया एक बन्धन है, जिससे मानव आत्मा अपने को स्वतन्त्र करने के लिए प्रयत्नशील है, यह अपने को उसी अवस्था में स्वतन्त्र कर सकती है जबकि ऐतिहासिक प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है। जब तक सब की मुक्ति नहीं हो जाती शक्तिशाली व्यक्ति दुर्बल व्यक्तियों की सहायता करते हैं। विश्वजनीन मुक्ति ही ऐतिहासिक प्रक्रिया का ध्येय है और जब इस लक्ष्य की प्राप्ति हो जाती है, तो यह प्रक्रिया स्वयमेव लुप्त हो जाती है। अनित्य एवं भौतिक तत्त्व शाश्वत में परिवर्त्तित हो जाता है।

इतिहास की धारा में जो कि अनन्त आत्मा को मूर्त्त रूप देने का एक साधन है, हम इसे ऐतिहासिक धारा का नियन्त्रण करने वाले दिव्य सिद्धान्त के रूप में स्वीकार करते हैं। भगवान् अनन्तता का महान् मौन समुद्र नहीं है जिसमें व्यक्ति अपने को खो देते हैं अपितु वह दिव्य पुरुष है जो इस प्रक्रिया को प्रारम्भ में और अन्त में, निरन्तर रूप से संचालित करता है। यह कहना कि भगवान् ने सृष्टि को उत्पन्न किया, उसके गौरव को कम करना है। वह तो इस समय और सदा ही सृष्टि कर रहा है। इस अर्थ में इतिहास दिव्य संकल्प शक्ति का एक महाकाव्य है, भगवान् का साक्षात्कार है। दैवी सत्ता भौतिक माध्यम द्वारा ही कार्य करती और प्रभा-मण्डित होती है। हिन्दू धर्म में दिव्य सत्ता को कवि या स्रष्टा कहा गया है। भगवान् पुरुष रूप में इस संसार के विषयों से घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है। वही मानव-जाति का मित्र, न्यायकर्त्ता और मुक्तिदाता है। भगवान् निरपेक्ष, कालातीत और अपरिवर्तनशील है। उसके माध्यम से ही सर्वोच्च सत्ता का न केवल हमें ज्ञान होता है, और वह हमारे सम्मुख प्रकट होती है, अपितु उसके द्वारा ही यह सृष्टि प्रक्रिया संचालित हो रही है। यह सर्वोच्च निरपेक्ष सत्ता ही असीमित सम्भावनाओं का योग एवं स्रोत है। इनमें से एक सम्भावना सृष्टि-प्रक्रिया में वास्तविक रूप धारण कर रही है। इस सम्भावना के प्रति जो कि पूर्णता प्राप्त करने की स्थिति में है, निरपेक्ष सत्ता भगवान् का रूप धारण कर लेती है, जो सामान्य योजना एवं निर्देशन के पूर्व ज्ञान के साथ विश्व का पथ-प्रदर्शन कर रहा है। भगवान् हमारी मनगढ़न्त कपोल-कल्पना नहीं है। भगवान् निरपेक्ष वास्तविक सत्ता का एक वास्त-विक प्रतीक है, वास्तविक रूप में घटित होने वाली विशेष सम्भावना

के साथ जो निरपेक्ष सत्ता का सम्बन्ध है, उसका एक पहलू है। वह निरपेक्ष सत्ता की विकृत प्रतिच्छाया नहीं है अपितु लीबनिज़ के शब्दों में वास्तविकता पर आधारित एक घटना है। जब भगवान् और संसार में पूर्ण एकता स्थापित हो जायगी, अर्थात् जब भगवान् का उद्देश्य पूर्ण हो जायगा, जब मानव आत्माएँ पूर्ण बन जायेंगी, तब भगवान् स्वयं उस निरपेक्ष सत्ता में लीन हो जायेंगे, तब यह सृष्टि-चक्र, व्यक्तियों को जन्म देने की प्रेरणा के अभाव में स्वतः बन्द हो जायगा। संसार-चक्र की समाप्ति का यह अभिप्राय नहीं कि निरपेक्ष आत्मा के अनन्तता के गुण का लोप हो जायगा।

संक्षेप में, हिब्बर्ट व्याख्यानमाला में मैंने इसी विचारधारा को विस्तार में प्रस्तुत किया और इन व्याख्यानों का अत्यन्त हार्दिक स्वागत हुआ। यूरोप और अमरीका के विख्यात दार्शनिकों ने जिनमें सैमुअल एलैक्जेण्डर और बर्ट्रेण्ड रसेल, जे० एच० म्यूरहैड और जे० एस० मैकेंजी, डब्ल्यू० आर० इंग और एल० वी० जैक्स तथा रवीन्द्रनाथ टैगोर और सर हरबर्ट सैमुअल जैसे विद्वान् थे—हार्दिक भाव से इनकी प्रशंसा की।

आक्सफोर्ड में मैंने समय-समय पर जो उपदश और व्याख्यान दिये वे 'East and West in Religion' (पूर्व और पश्चिम का धर्म) नामक पुस्तिका में संग्रहीत हैं। इन व्याख्यानों का मुख्य तत्त्व यही है कि धर्म का सार न्याय, प्रेमार्द्र दया और अपने साथियों को प्रसन्न बनाने में निहित है। सन्त कोई रंगीन शीशे की प्रतिमा नहीं होता, अपितु वह तो वह व्यक्ति होता है जो अपने साथियों के लिए कार्य करता है और उनमें पारस्परिक प्रेम तथा दयालुता के सुमधुर सम्बन्धों की सृष्टि के लिए प्रयत्न करता है। वह यह समझता है कि प्रत्येक व्यक्ति को उसकी उदारता के कोष से लाभान्वित होने

का अधिकार प्राप्त है। हमें केवल आत्मिक दृष्टि से ही मनुष्यों की समानता में विश्वास नहीं करना है अपितु भौतिक दृष्टि से भी। यह सच है कि हम एक टेलीफोन डाइरेक्टरी के साथ प्रेम नहीं कर सकते। मानव-प्रेम की परिभाषा उन पुरुषों और स्त्रियों के रूप में की जाती है, जिनके हम संपर्क में आते हैं।

आक्सफोर्ड और बरमिंघम में, मैनचैस्टर और लिवरपूल में ईसाई वेदियों से धर्मोपदेश करना मेरे लिए एक महान् अनुभव था। यह जान कर मुझे प्रसन्नता होती थी कि ईसाई श्रोता मेरे भाषणों को पसन्द करते थे। कष्ट-सहिष्णुता से क्रान्ति (Revolution through Suffering) विषयक मेरे उपदेश का निर्देश करते हुए, आक्सफोर्ड के एक दैनिक समाचार-पत्र ने लिखा था, "यद्यपि भारतीय प्रचारक में भाषा, विचार और कल्पना शक्ति द्वारा एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत करने की अद्भुत क्षमता विद्यमान है, परन्तु उसके उपदेश की वास्तविक महत्ता उस आध्यात्मिकता के कारण है, जिसकी परिभाषा नहीं की जा सकती, जो बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट कर लेती है, हमारे हृदय को आन्दोलित करती है और हमें ऊँचाई की ओर ले जाती है।"

: ४ :

जीवन की समस्याएँ

जिन्हें प्रकृति की सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, उन्हें यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सभी पर विधाता की कृपा-दृष्टि होगी। अगर कोई व्यक्ति सुख-सुविधासंपन्न सुरक्षित जीवन व्यतीत कर रहा है, जब कि दूसरे व्यक्ति अत्यन्त दयनीय स्थितियों में, भीषण मानसिक आघातों को सहते हुए जीवन-यापन कर रहे हैं, तो यह उस

भाग्यशाली व्यक्ति का कर्तव्य हो जाता है कि वह इन विपद्ग्रस्त विशेषाधिकार-वंचित लोगों के बारे में निरन्तर चिन्तन करे। शिक्षक होने के कारण मैं ऐसे अनेक नवयुवकों और नवयुवतियों के सम्पर्क में आया, जिनके जीवन का निर्माण-काल अभी प्रारम्भ ही हुआ था। दर्शन का विषय, जिसका ध्येय प्रारम्भिक रूप में उपयोगिता से संबद्ध नहीं है, उदार शिक्षा का एक महान् साधन है। इसका ध्येय है—मनुष्य को सांसारिकता से ऊँचा उठाना, परिस्थितियों से ऊँचा उठाना और भौतिक वस्तुओं के जाल से उसकी आत्मा को मुक्त कराना। जो लोग दर्शन की शिक्षाओं से लाभान्वित होना चाहते हैं, दर्शन उनके मन में उन वस्तुओं के प्रति अनुराग उत्पन्न करता है, जो न यह संसार दे सकता है और न वापस ले सकता है। दर्शन का अगर समुचित रीति से अध्ययन किया जाय और उसकी शिक्षाओं का अनुगमन किया जाय तो यह असफलता, दुःख और विपत्ति, नीरसता और हतोत्साहित होने से हमारी रक्षा करता है। अगर सफलता से हमारा अभिप्राय भौतिक संपदा के अम्बार लगा देना है, तो यह हमें उसके लिए तैयार न कर सकेगा। परन्तु यह हमें उन ध्येयों, आदर्शों और वस्तुओं से प्रेम करना सिखाता है जिनकी कीमत नहीं आँकी जा सकती और सांसारिक सफलता का अभिलाषी जनसाधारण उस ओर प्रवृत्त नहीं होता। मनुष्यों का निर्माण करना दर्शन का ध्येय है।

अपने शिष्यों को शिक्षा देते समय मेरी यह महत्त्वाकांक्षा थी कि मैं उनमें एक आध्यात्मिक एवं आचारात्मक विश्व के प्रति प्रगाढ़ विश्वास उत्पन्न करूँ। अगर अध्यात्म विद्या, करुणा तथा आन्तरिक शान्ति और प्रेम के सत्य हमारे हृदय पर अंकित हो जायें तो उन अधार्मिक वृत्तियों का हमारे जीवन पर कोई प्रभाव नहीं

पड़ेगा जो बाद के जीवन में हमें आक्रान्त कर लेती हैं। अपने शिष्यों के हृदय में मौन की महत्ता, आत्म-शुद्धि की आवश्यकता और आत्मिक जीवन की प्रभाविता अंकित करना आवश्यक है, ये उनकी एकाग्रता के विकास में सहायक होंगे, वे अपने व्यक्तित्व का नव-निर्माण कर सकेंगे और अपने स्वरूप को पहिचान सकेंगे। इस मौन में हम आत्मा की सूक्ष्म, शान्त आवाज को सुन पायेंगे, जिसमें कैदी स्वतन्त्रता के लिए छटपटा रहा है, यात्री अपने घर के लिए बेचैन है और सान्त अनन्त के लिए व्याकुल है। एकान्तावस्था में हम अपने साथ जो व्यवहार करते हैं, उसी का नाम धर्म है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में एक गुप्त मन्दिर है, जहाँ कोई दूसरा प्रवेश नहीं कर सकता, जिस मन्दिर में हमें प्रवेश करना चाहिए और अपने उस सच्चे स्वरूप की खोज करनी चाहिए जो हमारे उस बाह्य स्वरूप से सर्वथा भिन्न है जो हम बाह्य विश्व के सम्मुख प्रकट करते हैं। हममें से अधिकांश व्यक्ति आत्म-प्रवंचना से पीड़ित हैं और निरन्तर निरीक्षण से ही हमारी मुक्ति संभव है। मौन एवं ध्यान समस्त पूजा का सार है। ईसाइयों की साक्षात्कार की पुस्तक (The Book of Revelation) में एक बड़ी प्रभावोत्पादक घटना का वर्णन है कि जैसे ही ऋषि ने देवताओं को भगवान् के सिंहासन के सम्मुख पूजा करते हुए देखा, तो डेढ़ घण्टे तक सारे स्वर्ग में पूर्ण शान्ति छायी रही। संगीत-ध्वनि बन्द हो गयी, स्वर्गीय मण्डली की आवाज शान्त हो गयी। यह मौन निर्जीव नहीं था अपितु जीवन से ओतप्रोत था। देवताओं ने बोलना बन्द कर दिया और वे मौन होकर आत्मा की आवाज को सुनने लगे। उस शान्ति और मौन की अवस्था में हम वास्तविकता के अधिक निकट आते हैं और इस तथ्य से अवगत होते हैं कि हम किस प्रकार दैवी शक्ति

के चरणों में अपने जीवन-पुष्प को समर्पित कर सकते हैं।

व्रतों और प्रार्थनाओं का नाम पूजा नहीं है, अपितु विशुद्ध एवं व्याकुल हृदय से भगवान् का स्मरण करना पूजा है। कस्तूरी का वास तो हरिण के अपने अन्दर होता है परन्तु वह यही सोचता है कि यह सुगन्धि कहीं बाहर से आ रही है और उसकी खोज में वह अशान्त होकर घूमता है। भगवान् हमारे हृदय मन्दिर में विराजमान है और सत्य ज्ञान के लिए हमें अन्तर्मुख होना पड़ेगा। संस्कृत के एक श्लोक का भाव है कि अविवेकी पुरुष गहरी झीलों में डुबकी लगाता है, जंगलों की खाक छानता है और भगवान् की पूजा के निमित्त फूलों की खोज में ऊँची पहाड़ियों तक जाता है, जब कि वह भगवान् की सेवा में जो कमल सर्मापित कर सकता है, वह उसका अपना हृदय-कमल है। मनुष्य को जीवित बलिदान की भावना का विकास करना है। हम भगवान् के चरणों में कोई अपवित्र और विकृत वस्तु भेंट नहीं कर सकते। "भगवान् का मन्दिर पवित्र है और वही मन्दिर तुम स्वयं हो!" अपने चारों ओर विद्यमान अव्यवस्था में से हमें अपने भाग्य का निर्माण करना होगा और इसे जीवन की समस्त ऊँची-नीची घटनाओं में प्रकट करना होगा। अन्यथा हमारा जीवन विसंगत एवं निरुद्देश्य घटनाओं का एक अर्थहीन क्रम बन जायगा, जिसका आविर्भाव शून्य से होता है और जिसका पर्यवसान भी शून्य में है। जीवन में तभी सार्थकता आती है जब हम उन सब बाधाओं में, जो इसकी वृद्धि की अवरोधक हैं, एक विशेष उद्देश्य का अविचल भाव से अनुसरण करते हैं। वैयक्तिक मन घटनाओं को एक विशेष अर्थ, उद्देश्य, मूल्य और दिलचस्पी प्रदान करता है जब कि इन मूल्यों के प्रयोग के लिए दैवी शक्ति अवसर

प्रदान करती है। आत्म-चिन्तन के इन मौन क्षणों में हम दम घोटने वाली दिनचर्या और सांसारिक छद्मवेषों से अपने को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न करते हैं और शुद्धहृदयता तथा एकाग्रता का विकास करते हैं। योग का ध्येय है आन्तरिक मन और बाह्य जीवन में संपर्क स्थापित करना और इसके साधन हैं—मौन, ध्यान तथा आत्म-चिंतन।

मुझे यह जान कर परम गौरव की अनुभूति होती है कि मेरा कार्य बिल्कुल व्यर्थ नहीं हुआ। कुछ महिलाओं और पुरुषों को आधारभूत सत्य से परिचित कराने, इसे उनकी विचारधारा का एक अङ्ग और उनके जीवन का एक भाग बनाने में मुझे सफलता प्राप्त हुई है। मानसिक शान्ति और सहिष्णुता ही मानव-जीवन के सच्चे आभूषण हैं और इनकी महत्ता शारीरिक स्वास्थ्य या ऐश्वर्य से कहीं अधिक है। सच्चे अर्थों में महान् व्यक्ति वे नहीं होते जिनके पास विपुल ऐश्वर्य या बौद्धिक शक्ति होती है या जो उच्च सामाजिक पदों पर आसीन होते हैं। भगवान् को निर्धनों तथा अज्ञानियों की कम चिन्ता नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि क्या हम ने दूसरों के प्रति दयालुता प्रदर्शित की है और हम अपने प्रति तथा दूसरों के प्रति सर्वथा ईमानदार और निष्कपट रहे हैं। शारीरिक स्वास्थ्य और भौतिक संपदा से संपन्न व्यक्ति चिन्ता और दुःख से पीड़ित देखे गये हैं। अपने स्वागत कक्षों में उनके पीड़ित चेहरों पर भले ही मुस्कराहट दिखाई देती हो, पर उनके हृदय वेदना से भग्न होते हैं। अपनी वास्तविक स्थिति को अपने से छिपाने के लिए वे शक्ति और धन-संपत्ति का प्रयोग करते हैं और सांसारिक सफलताओं पर अपना ध्यान केन्द्रित करके वे अपनी कुछ प्रवृत्तियों की संतुष्टि कर लेते हैं। परन्तु अपने अन्तस्तल की गहराइयों में वे यह

अनुभव करते हैं कि उन्हें किसी वस्तु का अभाव है। वे इसे विधाता की कठोरता समझते हैं कि उन का कोई भी साथ नहीं देता, उनकी अपनी सन्तान उन्हें पराया समझती है, वे एक स्थिर केन्द्र-स्थान बनाने में कभी भी सफल नहीं होते और ज्यों-ज्यों वे वृद्ध होते जाते हैं, वे अपने को अधिकाधिक एकाकी अनुभव करने लगते हैं। उन्हें शीघ्र ही पता लग जाता है कि जीवन उनके लिए कोई अर्थ नहीं रखता और उनकी आँखों में वह मूक, आश्चर्यमिश्रित भय परिलक्षित होता है, जो हमें कभी-कभी पशुओं की आँखों में दिखाई देता है, जो एक गहरी उदासी और असीम व्यथा का द्योतक है। उनकी सुन्दर भाव-भङ्गिमाओं और मधुर ध्वनियों के बावजूद भी उनकी आँखों में एक वेदनासंकुल बेचैनी दिखाई देती है, जैसे कि यह दुनिया उनका वास्तविक घर न हो, वे किसी सुदूर देश से आये हैं और अब वापस नहीं जा पा रहे। एक अज्ञात व्यथा से उनका चित्त व्याकुल रहता है और वे हरेक भावना के प्रति उदासीनता धारण कर लेते हैं, तथा इस संसार से प्रयाण करने में ही वे परम शान्ति समझते हैं। हृदय की भावनाओं को पढ़ने की अभ्यस्त आँख को उनका निरर्थक आवेश, उनकी चहल-पहल और हँसी एक आडम्बरमात्र प्रतीत होती है। उनकी बेचैनी उनकी असन्तुलित अवस्था की ओर निर्देश करती है। वे इसलिए कष्ट उठाते हैं कि वे असम्बद्ध और निरर्थक चीजों से बचने के लिए जद्दो-जहद करते हैं। हमारी आत्मा जितनी ही अधिक जागरूक होती है हम उतने ही अधिक अपने को निराश अनुभव करते हैं। हमारी आत्मा अपराध भावना के बोझ से दबी होती है, इस भाव से व्याकुल रहती है कि हमें एक अधिक अच्छी जिन्दगी बसर करनी चाहिए थी और परिणामतः हमारे अन्दर भक्ति की भावना उदित

होती है। वेदना की यह अवस्था हमें इसका संभव समाधान ढूंढ़ने की दिशा में प्रेरित करती है, हम एक सच्चे साथी की खोज के लिए छटपटाते हैं जो हमारी आत्मा का पथ-प्रदर्शन कर सके, जिस प्रकार माता-पिता अपनी सन्तान का पथ-प्रदर्शन करते हैं। वे लोग धन्य हैं, जो विलाप करते हैं, कष्ट उठाते हैं और ज़ार-ज़ार रोते हैं। प्रेमी हृदय में ही हूक उठती है। जितना ही कोमल हमारा हृदय होता है उतना ही अधिक इसे कष्ट उठाना पड़ता है। विशाल-हृदय व्यक्तियों के दुःख की गहराई आँसुओं से नहीं मापी जा सकती। जीवन की सर्वप्रिय वस्तु का परित्याग करके और हृदय को कठोर बना कर ही हम कष्ट से मुक्ति पा सकते हैं। स्वर्ण-मुकुट धारण करने वाले सन्त की कहानी आपने सुन रखी होगी। जब यह सन्त स्वर्ग में पहुँचा उसने वहाँ सब सन्तों को मोतियों के मुकुट धारण किये देखा परन्तु उसे बिना मोतियों का स्वर्ण-मुकुट दिया गया था। इस पर उसने प्रश्न किया, "मेरे मुकुट में मोती क्यों नहीं लगे हैं?" देवदूत ने उत्तर दिया, "क्योंकि तुमने किसी को मोती नहीं दिये। ये मोती तो वे अश्रुकण हैं जो सन्तों ने पृथ्वी पर बहाये थे। तुमने कोई भी आँसू नहीं बहाए।" सन्त ने कहा, "मेरे आँसू क्योंकर बहते? मैं तो भगवान् के प्रेम में इतना अधिक प्रफुल्लित था।" इस पर देवदूत ने कहा, "बस, यह रहा आप का स्वर्ण-मुकुट, मोती तो उन सन्तों के लिए हैं जिन्होंने आँसू बहाए थे।" कष्ट से ही हम अपने को और दूसरों को समझ पाते हैं। सच्चे मानव-जीवन की शर्त है—कष्ट-सहिष्णुता और एकांत चिन्तन। केवल बाह्य जीवन व्यतीत करने वाले व्यक्ति, जो आत्मा की गहराइयों में नहीं गये हैं, इस कष्ट से बच सकते हैं। प्रायशः कष्ट दण्ड के रूप में न होकर अनुशासन के रूप में होता है। जब

हमें बहुत बड़ा मानसिक आघात पहुँचता है, जब हम भयग्रस्त, परेशान और पराजित होकर जीवन की निराश घड़ियों का सामना करते हैं, जब जीवन का माधुर्य पूर्णतः समाप्त हो जाता है, जब हमारे अन्तस्तल से अनायास ही यह करुण-क्रन्दन निकलता है "मेरे भगवान् तू कहाँ है ? तूने मुझे क्यों बेसहारा छोड़ दिया है ?" जब हमारे इस निराशा-भरे क्रन्दन का कोई जवाब नहीं मिलता, जब हमें महामौन का सामना करना पड़ता है, जब हमारे नीचे से हमारा आधार हमें खिसकता हुआ दिखाई देता है, और चारों ओर की दुनिया टूटती हुई नजर आती है, तब हमें सब कुछ सहन करना पड़ता है, तूफान का सामना करना पड़ता है, आशा का सहारा लेना पड़ता है और भगवान् के प्रेम में विश्वास करना पड़ता है। इस सब का अभिप्राय है कष्ट और कष्ट द्वारा ही हम जीवन की पाठशाला में सीखते और आगे बढ़ते हैं। कष्ट-सहिष्णुता द्वारा प्रकृति पर मन की विजय सिद्ध होती है और कष्ट ही हममें दयालुता के भावों की सृष्टि करता है। जब आत्मा को एक सहारा मिल जाता है, जीवन अनुशासित हो जाता है, आत्मा के आदेशों का पालन करने लगता है तब यह कष्ट दिव्य आनन्द में परिणत हो जाता है। कष्ट के भय के स्थान पर बहादुरी से कष्ट का मुकाबला करने की भावना उदित होती है। दिव्य आनन्द की प्राप्ति कण्टकाकीर्ण मार्ग से ही संभव है, जिसे मनुष्य स्वेच्छा से अंगीकार करता है।

हममें से प्रत्येक व्यक्ति विविध रूपों में दूसरे व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। हम दूसरों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क से स्वास्थ्य और शक्ति, सुविधा और प्रोत्साहन प्राप्त करते हैं। कुछ ऐसे भी उदार-हृदय व्यक्ति हैं, जिनके पास जब-जब हम सहानुभूति और

सहायता के लिए जाते हैं हमें निराश नहीं लौटना पड़ता। अन्धेरे स्थानों में उजाला करने वाले ये लोग पृथ्वी के रत्न हैं। हम प्रायः यह मान ही लेते हैं कि उनका प्रेम और मैत्री-भाव हमें सदा प्राप्त होगा। हम यह अनुभव नहीं कर पाते कि हम उनके कितने अधिक ऋणी हैं, यद्यपि मृदुलता, सहानुभूति और कृतज्ञता का कभी भी बदला नहीं चुकाया जा सकता। वे किसी पुरस्कार या बदले की आशा नहीं करते। विशुद्ध प्रेम में व्यक्ति केवल देना ही चाहता है, लेना नहीं चाहता, शुद्ध भेंट के रूप में प्राप्त करना चाहता है, अर्जित नहीं करना चाहता। आध्यात्मिक शब्दावली में प्रेम न्याय से कहीं अधिक महान् है, क्योंकि न्याय तो एक निर्मम देवता है। अपने प्रेम-पात्र के लिए व्यक्ति अपना सर्वस्व समर्पित करने को तैयार हो जाता है, उसे इस बात की जरा भी चिन्ता नहीं होती कि दुनिया उसे गलत समझती है, उसका मजाक उड़ाती है, उसकी निन्दा करती है, उस पर अत्याचार करती है और उसके दिल को ठेस पहुँचाती है। प्रेम के पवित्र मार्ग में बड़े से बड़ा बलिदान और अनन्य भाव तुच्छ हैं। जब हमारी आत्मा हमें मृतप्राय मालूम देती है, दुनिया वीरान नजर आती है, जब हमारे हृदय-सरोवर सूख जाते हैं और मस्तिष्क उलझ जाते हैं, हमें उस समय आलोचना से शान्ति और आशा नहीं मिलती अपितु प्रेम और सुहृदभाव ही हम में आशा का संचार करते हैं। ये ही मनुष्यों को जीवन की नवीन धाराओं की ओर ले जाते हैं। वे धन-संपति से महान् हैं, यश से महान् हैं और संस्कृति से भी कहीं अधिक महान् हैं। संसार के शक्तिशाली पुरुष भी वह कार्य नहीं कर पाते जिसे निर्धनतम व्यक्ति संपादित कर देते हैं। प्रेम और मैत्री के पवित्र भाव शक्ति या धन पर आश्रित नहीं हैं। उनके लिए न ही हाथों की जरूरत है और न

ही पैरों की। वे आँखों के माध्यम से द्युतिमान होते हैं और एक मधुर बोल और मुस्कराहट द्वारा आशा, उत्साह तथा प्रफुल्लता का संचार करते हैं। एक सदय हस्त का स्पर्श प्रायः विद्युत की तरह एक अँधेरे हृदय में उजाला कर देता है। सृजनात्मक महाप्राण पुरुषों की एक भाव-भंगिमा और वार्तालाप लोगों के दिलों पर बड़े अमिट प्रभाव छोड़ जाते हैं। मानव हृदयों में अवरुद्ध मानवता और आदर्शवाद का स्रोत उमड़ने लगता है।

यह मानवता से ओतप्रोत प्रेममय जीवन एक पण्डितम्मन्य विद्वान् या शुष्क विचारक के जीवन से मुझे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है। सुसंस्कृत व्यक्तियों को दुर्बलों तथा असहाय व्यक्तियों की सहायता की भावना का सदा विकास करना चाहिए। कोई आदमी दूसरे आदमी को नहीं जानता। जिसको कोई आदमी नहीं जानता या समझता, उसके बारे में वह कैसे निर्णय दे सकता है? हम दूसरों के केवल शब्दों या क्रियाओं को जानते हैं। हम उनके विचारों और अवचेतन मनों को नहीं पढ़ सकते। हम उनकी आत्मा की गहराइयों में नहीं प्रवेश कर सकते, उनके हृदय-समुद्र में उठने वाले मौन आवेशों को नहीं समझ सकते। जब तक कोई व्यक्ति अपने को दूसरे की स्थिति में रख कर अनुभव करने का प्रयत्न नहीं करता, वह कदापि यह अनुभव नहीं कर सकता कि दूसरे का जीवन किस प्रकार का है। इसके अतिरिक्त किस व्यक्ति का जीवन इतना शुद्ध है, किसका चरित्र इतना निष्कलंक है कि वह दूसरों की आलोचना कर सके। यदि सब व्यक्तियों की आध्यात्मिक दृष्टि से परीक्षा की जाय, तो बहुत थोड़े व्यक्ति ही दण्ड से बच पायेंगे। हममें से अधिकांश व्यक्तियों की उस समय बड़ी विचित्र एवं दयनीय स्थिति हो जाती है जब हम किसी उग्र आवेश के वशी-

भूत हो बुद्धि को तिलांजलि दे देते हैं। हमारी तुलना वन के उन पक्षियों से की जा सकती है, जो पिंजड़े की सलाखों के साथ व्यर्थ में अपने पंख फड़फड़ा रहे हैं। हमें किसी के बारे में एक दम से एक-तरफा फैसला नहीं दे देना चाहिए। ईसामसीह के सामने जब एक व्यभिचारिणी स्त्री को लाया गया तो उन्होंने उससे मुँह नहीं फेर लिया अपितु उन्होंने उन लोगों से मुँह फेर लिया जो उस पर लांछन लगा रहे थे। उन्हें उन लोगों की दूषित विचारधारा, इन्द्रिय-लोलुपता और उस गरीब औरत के प्रति अभद्र व्यवहार से बहुत रोष हुआ। उस तुच्छता की भावना तथा निर्दय एवं ईर्षाभरी आलोचना के बीच ईसामसीह का प्रेम ही केवल यथार्थ था। पुण्यात्मा महा-प्राण पुरुषों के विशाल हृदयों में किसी के प्रति घृणा या ऊँच-नीच का भेद-भाव नहीं होता। अपने हृदय की गहराई में प्रत्येक व्यक्ति यह अच्छी तरह जानता है कि वह भी दूसरे मनुष्यों की तरह एक तुच्छ इंसान है। प्रलोभित किये जाने पर अनेक व्यक्ति अपराध की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं और वही व्यक्ति प्रेरणाप्रद स्फूर्तिमय वचनों से सब की प्रशंसा के पात्र और नायक बन सकते हैं। अज्ञान एवं परिस्थितियों के प्रभाव से मनुष्य विविध एवं विचित्र रूपों में ढाले जाते हैं। सब मनुष्य अपनी वृत्तियों पर विजय नहीं पा सकते यद्यपि इस पृथ्वी पर ज्ञात प्राणियों में से केवल मनुष्य ही ऐसा है जो आध्यात्मिक ज्ञान एवं प्रेरणा द्वारा इन पाशविक वृत्तियों से मुक्ति पा सकता है। हम में से अधिकांश व्यक्ति अपने आवेशों के दास हैं। जब हम इनके वश में होते हैं तब हमारे लिए वस्तुओं को उनके वास्तविक स्वरूप में देखना संभव नहीं होता। हमारे मन को जो अच्छा लगता है, हम उस पर विश्वास कर लेते हैं। इसलिए प्रत्येक पवित्रात्मा पुरुष का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह सचाई के मार्ग

पर चलें और बुराई का परित्याग करे। सर्वाधिक अधम पुरुष में भी दिव्य अग्नि की कभी न बुझने वाली चिनगारी विद्यमान होती है। शाश्वत दिव्य सत्ता के रहस्य सभी में अन्तर्हित हैं यद्यपि उनकी अभिव्यक्ति कुछ व्यक्तियों में ही संभव होती है।

मेरे एक मित्र ने, जो मुझे पिछले २० वर्षों से खूब अच्छी तरह जानते हैं, मेरे बारे में व्यंग कसते हुए कहा कि मुझे क्रोध नहीं आता और मैं न केवल मूर्खों को अपितु पापियों को भी प्रसन्नतापूर्वक सहन कर लेता हूँ। मुझे भय है कि उनका मेरे बारे में यह विचार असत्य नहीं है। अच्छे और बुरे पुरुषों में अन्तर करना कोई सरल कार्य नहीं है। सैद्धान्तिक रूप से विचारों का तो अच्छे और बुरे में विभाजन किया जा सकता है, परन्तु मनुष्यों का नहीं, क्योंकि हममें से प्रत्येक में विभिन्न अंशों में अच्छे और बुरे, उच्च और नीच तथा सत्य और असत्य तत्त्व मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त उचित तथा अनुचित के बारे में समाज की अपनी विचित्र धारणाएँ हैं। उदार वैयक्तिक सम्बन्धों को अनुचित ठहराया जाता है जबकि संपूर्ण राष्ट्रों को युद्ध में झोंकने वाले कृत्यों को उचित ठहराया जाता है। निर्दयता, धोखाधड़ी और शोषण को क्षमा कर दिया जाता है, जब कि बुरे व्यक्ति से प्रेम करने पर लांछन लगाये जाते हैं। यद्यपि बुरा होना उस व्यक्ति का केवल दुर्भाग्य ही है, कोई अपराध नहीं। विषयी मनुष्यों को सन्त बनाना कहीं सरल है अपेक्षाकृत पाखण्डियों के। जीवन की अनन्त व्यथा को समझने के लिए अनन्त समवेदना की जरूरत है। पापियों पर हमें लांछन नहीं लगाने हैं, उनकी आलोचना नहीं करनी है। वे तो इस बात के लिए व्याकुल हैं कि कोई उनके दिलों की गहराई में उतरे, उन्हें थोड़ी सुविधा, सम्मान और विश्रान्ति प्रदान करे। जब वे आश्चर्यचकित खड़े

होते हैं, जब उनके अपने ही कुकृत्यों के दबाव से और संसार की घृणा के कारण उनका मस्तिष्क फटा जाता है, उस समय उन्हें ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है, जिस पर वे पूर्णतः विश्वास कर सकें। वे मानवीय प्रेम के भूखे हैं। उन्हें दया—जो घृणा का ही एक रूप है—की आवश्यकता नहीं अपितु उस मृदुल व्यवहार की आवश्यकता है, जो उनके भूत की उपेक्षा कर देता है और उनके भविष्य के निर्माण में सहायक सिद्ध होता है। मानसिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति में परिवर्तन द्वारा हम अपनी अधोगति को रोक सकते हैं और अपने लिए एक नूतन भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। यह हम पर निर्भर करता है कि हम व्यसनों में फँस कर विनाश के गर्त्त में जा गिरें या एक तीर्थयात्री के समान प्रगति पथ पर अग्रसर हों। प्रेम के माध्यम से उचित परिवर्त्तन करने की शक्ति में मेरी दृढ़ आस्था है। इस कार्य में हमारा मित्र एक विश्ले-षक का रूप ले लेता है, जो पाशविक वृत्तियों और धारणाओं के दुष्प्रभावों का उद्घाटन कर उन्हें दूर करने में सफल होता है। कुछ व्यक्ति इसलिए मौन होते हैं क्योंकि उनके पास कहने के लिए कुछ नहीं होता, दूसरे इसलिए मौन होते हैं क्योंकि उनके पास कोई ऐसा व्यक्ति नहीं होता जिससे वे अपने हृदय की बात कह सकें। एक सच्चे मित्र के आगे तो अधम से अधम व्यक्ति भी अपना हृदय उँडेल कर रख देगा और इस प्रकार उसे सान्त्वना मिलेगी। सच्चा मित्र कठोर वास्तविकता का सामना करने से घबड़ाता नहीं, अपितु वह तो उसे यथार्थ रूप में देखता है। मानव आत्मा सारतः एक स्नेह करने की वस्तु है। कोई भी मनुष्य स्वभावतः पापी नहीं होता और न ही ऐसी बात है कि उसका सुधार न हो सके। कोई भी आदमी सदैव आत्मा का हनन करने या उसे धोखा देने में सफल

नहीं हो सकता। मनुष्य का सर्वोत्कृष्ट पक्ष उसका वास्तविक पक्ष है, उसका सच्चा स्वरूप है। जीवन के प्रति ऐसी धारणा का परिणाम यह होता है कि मनुष्य मानवीय जड़ता एवं दुर्बलता की ओर ध्यान नहीं देता। सेण्ट पाल के शब्दों में, "जब दूसरे व्यक्ति कुमार्ग की ओर प्रवृत्त होते हैं, प्रेम कभी भी हर्षित नहीं होता, प्रेम सदा अच्छाई से प्रसन्न होता है, दोष खोज निकालने में वह सदा मन्द रहता है, हमेशा भलाई में विश्वास करने में उसकी प्रवृत्ति होती है, वह सदा आशावादी होता है, सदा धैर्यशाली होता है।"

जिन लोगों को हम चाहते हैं, उनकी क्रियाओं की आलोचना करना सबसे अधिक कठिन कार्य है परन्तु सच्ची मित्रता का यही तकाजा है कि हम उनकी आलोचना करने से संकोच न करें। हर बार जब मित्र से साहस और प्रेरणा मिलती है तो यह बन्धन दृढ़तर होता जाता है। एक सच्चा मित्र केवल खोज खबर ही नहीं लेता अपितु वह और अधिक गहराई में उतरता है और अन्तस्तल तक पहुँचता है, यद्यपि दोषोद्घाटन की यह निर्दय प्रक्रिया अत्यन्त पीड़ाजनक है। मानसिक शान्ति और आन्तरिक समस्वरता की प्राप्ति ज्ञान और समायोजन द्वारा ही सम्भव है। हमें अपने प्रति पूर्ण ईमानदार होते हुए अपने को परिस्थितियों के अनुकूल ढालना चाहिए। हमें अपने आप से कभी असत्य नहीं बोलना चाहिए। अगर यह सत्य है कि हम तब तक पूर्णतः नहीं जान सकते, जब तक हम पूर्णतः प्रेम नहीं करते, तो यह भी उतना ही सत्य है कि हम तब तक पूर्णरूपेण प्रेम नहीं कर सकते जब तक हम अपने को पूर्णरूपेण नहीं जान लेते। हम शर्म से पीछे हट जाते हैं। हम ऐसा अनुभव करते हैं कि हम अपने से दूर भाग रहे हैं, अपने घातक दोषों का उद्घाटन कर रहे हैं, अपने को धोखा

दे रहे हैं, परन्तु सच्चे प्रेम में इन भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं है। यद्यपि सामान्यतः यह अति विचित्र और पीड़ाजनक प्रतीत हो सकता है और कभी-कभी तो इसे प्रेम की संज्ञा देना भी कठिन प्रतीत होता है। इसमें व्यग्रता या विवशता अनुभव करने से कोई लाभ नहीं। जब तक यह भावना हम में मौजूद है हम अपने स्वरूप को वस्तुतः नहीं समझ सकते। मित्र की आलोचना द्वेष-भाव से प्रेरित नहीं होती। जिन दोषों से हम पीड़ित हैं, जब एक बार उन का उद्घाटन हो जाता है तो उनकी शक्ति जाती रहती है। जब तक हम सत्य की तह तक नहीं पहुँचते हम बाहर ही भटकते रहेंगे और अन्दर से हम सत्वहीन होंगे। हमें मिथ्या अभिमान का परि-त्याग करना होगा और वास्तविकता के नग्न सत्यों का उद्घाटन करना होगा, यद्यपि इससे हमें पीड़ा होगी और हमें बलिदान करना पड़ेगा परन्तु यह अत्यन्त आवश्यक है। महाभारत के अनुसार सत्य एक उच्च कोटि की तपस्या और बलिदान है। वहाँ कहा गया है, "सत्य और श्रेय साथ-साथ चलते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को आदर से सत्य के आगे अपना मस्तक झुकाना चाहिए। सत्य ही सर्वोच्च शरण-स्थल है। सत्य कर्तव्य है, सत्य तपस्या है, सत्य योग है। सत्य ही शाश्वत ब्रह्म है। सत्य एक ऊँचे प्रकार का बलिदान है। संसार की प्रत्येक वस्तु सत्य पर आश्रित है।" सत्य और वास्तविकता, असत्य और प्रतीति नहीं, स्थायी मैत्री एवं आध्यात्मिक जीवन की आधारशिलाएँ हैं। इस प्रकार की मैत्रीपूर्ण बातों का आध्या-त्मिक ज्ञान से कोई सम्बन्ध नहीं, जहाँ पापी अपने पाप की गहरा-इयों का अत्यन्त हर्ष से बखान करते हुए उन आध्यात्मिक ऊंचा-इयों का वर्णन करता है, जहां वह पहुंच सका है।

इस संसार में अनेक निराश, निराश्रित और अव्यवस्थित-

चित्त व्यक्ति हैं, जो कुछ लोगों के आगे अपना हृदय खोल कर रख देते हैं। समाज से प्रताड़ित और अत्याचार के झंझावात से प्रकम्पित ये व्यक्ति सफल व्यक्तियों की अपेक्षा कहीं अधिक हमारे हृदय के निकट हैं, क्योंकि उनमें जीवन के रहस्य, सौन्दर्य और वेदना के दर्शन होते हैं। यद्यपि निराश और बहिष्कृत होने में कोई विशेषता नहीं है, हम उनमें अजेय आत्मा को भाग्य या परिस्थितियों से जद्दोजहद करते हुए देखते हैं। आत्मा कभी हताश नहीं होती, यह चाहे कितनी ही प्रताड़ित हो जाय। हम नहीं जानते यह कौन सा विश्वास है, यह कहाँ से आता है, हृदय से या मस्तिष्क से और किस प्रकार यह दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापित करता है। हम नहीं जानते यह आँख से दृश्य है या कान से श्रव्य है। अधिक अध्ययन या विचार द्वारा इसकी प्राप्ति नहीं होती। यह एक अद्भुत वरदान है, जो एक को मिला है और दूसरे को नहीं। मुझे शीघ्र ही यह पता चल गया कि इस अमूल्य वरदान का एक अंश मेरे भाग्य में भी आया था। ऐसी एक विचित्र धारणा फैली हुई है कि हिन्दू, विशेषकर वे हिन्दू, जो दर्शन के विषय में बात करते हैं, आत्मा के संसार में अधिक खोए रहते हैं। मैं इससे सहमत नहीं हूँ। मेरे पत्र-व्यवहार में ऐसे अनेक पत्र हैं जिनमें हर प्रकार की विपत्ति में परामर्श और सहायता माँगी गई है। इन में से कुछ पत्र बड़े असंगत हैं, कुछ अत्यन्त करुणाजनक हैं और कुछ में ये दोनों ही चीजें हैं। इन पत्र-व्यवहार करने वालों में अनेक ऐसे भी झक्की लोग हैं, जिन्होंने दुनिया की बुराइयों के लिए अपने ही इलाज तजवीज किये हैं। परन्तु कभी-कभी अपने पुराने परिचित मित्रों से, पत्र-व्यवहार के माध्यम से अधिक निकट आने वाले व्यक्तियों से तथा पूर्णरूपेण अजनबी व्यक्तियों से मेरे पास लम्बे-लम्बे पत्र

आते हैं, जिनमें उनके अपने या अपने मित्रों के कष्टों का वर्णन होता है। मुझे उनकी आयु, वृत्ति, शिक्षा या दर्जे से कोई सम्बन्ध नहीं है। मुझे यह अनुभव करते हुए अत्यन्त प्रसन्नता होती है कि मैं ही एकमात्र या पहला व्यक्ति था जिसने कुछ निराश और भयग्रस्त आत्माओं के प्रति सहानुभूति और सद्भावना प्रदर्शित की। कभी-कभी दूसरे लोगों में मेरी दिलचस्पी इतनी अधिक और सहज होती है कि लोग इसे गलत समझ लेते हैं। ऐसे भी उदाहरण हैं जहाँ मेरे पुष्कल प्रयत्नों के बावजूद भी प्रत्याशित परिणाम नहीं निकले। ये केवल इस ओर संकेत करते हैं कि मैं इन समस्याओं को बुद्धिमत्तापूर्वक नहीं सुलझा सका।

मुझे इसकी हार्दिक प्रसन्नता है कि मैं अपने अनेक साथियों के संपर्क में आया हूं। मेरा दैवयोग या आकस्मिकता जैसी किसी चीज में विश्वास नहीं है। इच्छाएँ अदृश्य रूप से प्रकृति की शक्तियों द्वारा कार्य करती हैं। प्रत्यक्षतः कभी-कभी अनावश्यक तुच्छ घटनाएँ भी हमारे जीवन में एक अप्रत्याशित भाग अदा करती हैं। ऐसी एक चीज आध्यात्मिक गुरुत्वाकर्षण है। हम कभी पूर्णरूपेण इस चीज की व्याख्या नहीं कर सकते कि क्यों कुछ लोग हमें आकर्षित करते हैं। हम उनका प्रत्युत्तर दिये बिना नहीं रह सकते, वे हमें बहुत अच्छे लगते हैं। गेटे के शब्दों में, सौन्दर्य अपने को कभी नहीं समझ सकता। आकर्षण की भी आंशिक व्याख्या ही की जा सकती है। कुछ लोगों का भक्तिभाव की ओर अधिक ध्यान होता है। ऐसा क्यों होता है, इसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। हमारी रुचियों और अरुचियों के वास्तविक कारण प्रायः हमारी प्रकृति में बहुत गहरे छिपे होते हैं। उनका बुद्धि या तर्क से कोई सम्बन्ध नहीं होता और हम उनकीव्याख्या नहीं कर सकते। मुझे अपने

जीवन में अत्यन्त आश्चर्यजनक अनुभव हुए हैं। इन अनुभवों द्वारा मेरी प्रकृति की गहराइयाँ अत्यन्त विस्मयजनक रूप से मेरे सन्मुख उद्घटित हुई हैं। इनके द्वारा मेरा जीवन अपने चारों ओर की सामाजिक अवस्था से अधिक घनिष्ठ रूप से संबद्ध हुआ है, अधिक गहन और अधिक कठिन बना है परन्तु यह साथ ही साथ अधिक समृद्ध और अधिक पूर्ण बना है। इन अनुभवों ने मानवीय प्रेम एवं सद्भावना के बन्धनों को दृढ़ किया है, मुझे असीम आनन्द तथा शोक की गहरी अनुभूति करायी है और वे मेरे जीवन के साथ बिल्कुल घुल-मिल गये हैं। उन्होंने एक प्रकार से मेरे भाग्य का पुर्ननिर्माण किया है।

मुझे भी अपनी जिन्दगी में चिन्ताओं और दुःखों का सामना करना पड़ा है। परन्तु इनके साथ ही मुझे सुख-सौभाग्य का वरदान भी प्राप्त हुआ है। मेरे प्रति दूसरे लोगों ने प्रचुर मात्रा में प्रेम और दयालुता का प्रदर्शन किया है। इन सब के लिए मैं उनका हृदय से आभारी हूँ। बुद्ध और ईसामसीह से लेकर साधारण मानव प्राणियों तक सच्चे धर्मात्मा पुरुषों ने, प्रकृति, मस्तिष्क एवं हृदय के भारी दोषों के बावजूद भी मानवता के भार को हलका करने और उसमें आशा का संचार करने का प्रयत्न किया है, जिसके अभाव में अपनी दुष्कर यात्रा के दौरान में यह मूर्च्छित होकर गिर पड़ती। अगर हमें कुछ अंश में भी इन महापुरुषों का अनु-करण करना है तो हमें दुर्बलों की सहायता करनी होगी और निराश हृदयों में आशा की ज्योति का संचार करना होगा। मनुष्य को यह जान कर चिन्ता होती है कि वह संसार में व्याप्त व्यथा के बहुत बड़े बोझ में हिस्सा नहीं बँटा सकता, गरीब और क्षुद्र लोगों के कष्ट का निवारण नहीं कर पाता। मनुष्य को एकान्त

में भी अपनी जिन्दगी के दिन काटने पर दु:ख अनुभव नहीं होगा, अगर उसे कभी-कभी हँसने खेलने के लिए एक बालक की देवोपम संगति मिल जाए और किसी व्यथित आत्मा को सांत्वना प्रदान करने का पुनीत अवसर मिल जाय जो एक प्रकार से उसे आह्लादित करेगा और उसके हृदय में नई आशा का संचार करेगा ।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दु:खतप्तानाम् प्राणिनाम् आर्तिनाशनम् ।।

भागवत ९-११-१२